मलिक मुहम्मद जायसी

एक मूल्यांकन

(Malik Muhammad Jayasi : An Evaluation)

कंचन शर्मा

मलिक मुहम्मद जायसी : एक मूल्यांकन

मलिक मुहम्मद जायसी

एक मूल्यांकन

(Malik Muhammad Jayasi : An Evaluation)

कंचन शर्मा

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5471-0

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

मलिक मुहम्मद जायसी हिन्दी साहित्य के भक्ति काल की निर्गुण प्रेमाश्रयी धारा के कवि थे। वे अत्यंत उच्चकोटि के सरल और उदार सूफी महात्मा थे। जायसी मलिक वंश के थे। मिस्र में सेनापति या प्रधानमंत्री को मलिक कहते थे। दिल्ली सल्तनत में खिलजी वंश राज्यकाल में अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चाचा को मरवाने के लिए बहुत से मलिकों को नियुक्त किया था, जिसके कारण यह नाम उस काल से काफी प्रचलित हो गया था। ईरान में मलिक जमींदार को कहा जाता था व इनके पूर्वज वहां के निगलाम प्रान्त से आये थे और वहीं से उनके पूर्वजों की पदवी मलिक थी। मलिक मुहम्मद जायसी के वंशज अशरफी खानदान के चेले थे और मलिक कहलाते थे। फिरोज शाह तुगलक के अनुसार बारह हजार सेना के रिसालदार को मलिक कहा जाता था। जायसी ने शेख बुरहान और सैयद अशरफ का अपने गुरुओं के रूप में उल्लेख किया है।

जायसी सूफी संत थे और इस रचना में उन्होंने नायक रतनसेन और नायिका पद्मिनी की प्रेमकथा को विस्तारपूर्वक कहते हुए प्रेम की साधना का संदेश दिया है। रतनसेन ऐतिहासिक व्यक्ति है, वह चित्तौड़ का राजा है, पद्मावती उसकी वह रानी है, जिसके सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर तत्कालीन सुल्तान अलाउद्दीन उसे प्राप्त करने के लिये चित्तौड़ पर आक्रमण करता है और यद्यपि युद्ध में विजय प्राप्त करता है तथापि पद्मावती के जल मरने के कारण उसे नहीं

प्राप्त कर पाता है। इसी अर्द्ध ऐतिहासिक कथा के पूर्व रतनसेन द्वारा पद्मावती के प्राप्त किए जाने की व्यवस्था जोड़ी गई है, जिसका आधार अवधी क्षेत्र में प्रचलित हीरामन सुग्गे की एक लोककथा है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। आशा करती हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखिका

अनुक्रम

प्रस्तावना *v*

1. मलिक मोहम्मद जायसी **1**

कृतियाँ 1

मलिक मुहम्मद जायसी का व्यक्तित्त्व 4

जायसी का बचपन 6

जायसी एक किसान 7

जायसी के पुत्र 8

जायसी गुरु-परंपरा 9

जायसी की काव्य रचना 12

जायसी का खुद के बारे में कथन 13

जायसी की प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय 14

अखरावट का रचनाकाल 15

जीव ब्रह्म 16

साधना– 17

आखिरी कलाम 19

चित्ररेखा 20

चित्ररेखा में प्रेम की सर्वोच्चता 21

मसला या मसालानामा 24

पद्मावत 24
2. जायसी का रहस्यवाद 27
पद्मावती के पारस रूप का प्रभाव 28
रहस्यवाद का इतिहास 29
रहस्यवाद की विशेषताएँ 31
ब्रह्म को जगत के सभी कार्यों में देखना 32
अनुभव के बाद मिलन की तड़पन 32
संगीतमय काव्य 32
संकेतिकता 33
आत्मा परमात्मा में एकता 33
सुख और दु:ख दोनों की अभिव्यक्ति 33
रहस्यवाद के प्रमुख कवि 34
रहस्यवाद के अंतर्गत प्रेम के स्तर 36
कबीर और जायसी का रहस्यवाद–तुलनात्मक विवेचन 45
3. पद्मावत 53
परिचय 54
हीरामन की कथा 54
कथानक 57
सूए का बिकना 57
सूए द्वारा पद्मावती का बखान 58
रत्नसेन का सिंहल जाना 58
पद्मावती का विलाप 62
लक्ष्मी द्वारा रत्नसेन की परीक्षा 62
राघव को देश से निकाला 63
राघव का बदला 63
अलाउद्दीन द्वारा चढ़ाई और संधि 64
नीतिज्ञों द्वारा विरोध 64
रत्नसेन को पकड़कर दिल्ली ले जाना 65
गोरा बादल 65
उत्तर भारत में प्रचलित कथा 68
'पद्मावत' की प्रेमपद्धति 68

रूपलोभ और प्रेमलक्षण 70
नागमती का प्रेम 70
4. आखिरी कलाम 73
5. जायसी का बारहमासा 96
सखियों द्वारा नागमती को धैर्य धारण का प्रयास 96
आषाढ़ मास में नागमती की विरह -वेदना 97
श्रावण मास में नागमती की विरह -वेदना 97
भाद्रपद मास में नागमती की विरह -वेदना 97
आश्विन मास में नागमती की विरह -वेदना 98
कार्तिक मास में नागमती की विरह -वेदना 98
मार्गशीर्ष मास में नागमती की विरह -वेदना 98
पौष मास में नागमती की विरह -वेदना 99
माघ मास में नागमती की विरह -वेदना 99
फाल्गुन मास में नागमती की विरह -वेदना 99
चैत्र मास में नागमती की विरह -वेदना 100
वैशाख मास में नागमती की विरह -वेदना 100
ज्येष्ठ मास में नागमती की विरह -वेदना 101
6. नागमती वियोग खण्ड 102
7. मलिक मोहम्मद जायसी के अनमोल दोहे 112
8. सूफी मत और भारतीय वातावरण 114
9. भक्ति काल 118
संत कवि 120
परिचय 120
कृष्णाश्रयी शाखा 124
कृष्ण-काव्य-धारा की विशेषताएँ 125

1

मलिक मोहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी हिन्दी साहित्य के भक्ति काल की निर्गुण प्रेमाश्रयी धारा के कवि थे। वे अत्यंत उच्चकोटि के सरल और उदार सूफी महात्मा थे। जायसी मलिक वंश के थे। मिस्र में सेनापति या प्रधानमंत्री को मलिक कहते थे। दिल्ली सल्तनत में खिलजी वंश राज्यकाल में अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चाचा को मरवाने के लिए बहुत से मलिकों को नियुक्त किया था, जिसके कारण यह नाम उस काल से काफी प्रचलित हो गया था। ईरान में मलिक जमींदार को कहा जाता था, व इनके पूर्वज वहां के निगलाम प्रान्त से आये थे और वहीं से उनके पूर्वजों की पदवी मलिक थी। मलिक मुहम्मद जायसी के वंशज अशरफी खानदान के चेले थे और मलिक कहलाते थे। फिरोज शाह तुगलक के अनुसार बारह हजार सेना के रिसालदार को मलिक कहा जाता था। जायसी ने शेख बुरहान और सैयद अशरफ का अपने गुरुओं के रूप में उल्लेख किया है।

कृतियाँ

उनकी 21 रचनाओं के उल्लेख मिलते हैं, जिसमें पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम, कहरनामा, चित्ररेखा, कान्हावत आदि प्रमुख हैं। पर उनकी ख्याति का आधार पद्मावत ग्रंथ ही है। इसमें पद्मिनी की प्रेम-कथा का रोचक वर्णन हुआ है। रत्नसेन की पहली पत्नी नागमती के वियोग का अनूठा वर्णन

है। इसकी भाषा अवधी है और इसकी रचना-शैली पर आदिकाल के जैन कवियों की दोहा चौपाई पद्धति का प्रभाव पड़ा है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने मध्यकालीन कवियों की गिनती में जायसी को एक प्रमुख कवि के रूप में स्थान दिया है। **शिवकुमार मिश्र** के अनुसार शुक्ल जी की दृष्टि जब जायसी की कवि प्रतिभा की ओर गई और उन्होंने जायसी ग्रंथावली का संपादन करते हुए उन्हें प्रथम श्रेणी के कवि के रूप में पहचाना, उसके पहले जायसी को इस रूप में नहीं देखा और सराहा गया था। इसके अनुसार यह स्वाभाविक ही लगता है कि जायसी की काव्य प्रतिभा इन्हें मध्यकाल के दिग्गज कवि गोस्वामी तुलसीदास के स्तर की लगती है। इसी कारण से उन्हें तुलसी के समक्ष जायसी से बड़ा कवि नहीं दिखा। शुक्ल जी के अनुसार जायसी का क्षेत्र तुलसी की अपेक्षा परिमित है, पर प्रेमवेदना अत्यंत गूढ़ है।

महात्मा कबीर दास मुसलमान और हिंदू दोनों के कट्टरपन को फटकार चुके थे। कबीर काल में जनता 'राम' और 'रहीम' की एकता मान चुकी थी। साधुओं और फकीरों को दोनों दीन धर्म के लोग आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। ऐसे साधू या फकीर, जोकि भेदभाव से परे थे, लोग उनको हर सम्मान देते थे। काफी दिनों तक एक साथ रहते- रहते मुसलमान एक- दूसरे के सामने अपना-अपना हृदय खोलने लग गए थे। इससे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि लोग मानवता के सामान्य भावों के प्रवाह में मग्न होने और करने लगे थे। दोनों एक- दूसरे की कहानियाँ, जैसे हिंदू मुसलमान की दास्तान हमजा और मुसलमान हिंदूओं की रामकहानी को सुनने को तैयार हो गये थे। चारों तरफ मुसलमान नल और दमयंती और हिंदू लैला- मजनूँ की कथा जान चुके थे। कबीर ने ऐसा पाठ पढ़ाया था कि दोनों समुदायों के लोग ईश्वर तक पहुँचने वाला मार्ग ढूँढ़ने की सलाह साथ बैठ कर ही करने लगे थे। एक तरफ आचार्य व महात्मा भाव- प्रेम को सर्वोपरि ठहरा चुके थे और दूसरी तरफ सूफी महात्मा मुसलमानों को 'इश्क हकीकी' का सबक पढ़ाते थे। हिंदू और मुसलमान दोनों के बीच 'साधुता' का सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित हो गया था। बहुत से मुसलमान फकीर भी अहिंसा का सिद्धांत स्वीकार करके मांस भक्षण को बुरा कहने लगे थे।

ऐसे समय में कुछ भावुक मुसलमान 'प्रेम की पीर' की कहानियाँ लेकर साहित्य क्षेत्र में काफी आगे तक आए। इन्हीं कवियों और लेखकों में एक मलिक मुहम्मद जायसी भी थे।

संक्षिप्त परिचय

मलिक मुहम्मद जायसी के वंशज अशरफी खानदान के चेले थे और मलिक कहलाते थे। तारीख फीरोजशाही में है कि बारह हजार रिसालदार को मलिक कहा जाता था।

मलिक मूलतः अरबी भाषा का शब्द है। अरबी में इसके अर्थ स्वामी, राजा, सरदार आदि होते हैं। मलिक का फारसी में अर्थ होता है – 'अमीर और बड़ा व्यापारी'। मलिक जायसी पूर्वजों से चला आया 'सरनामा' है। मलिक सरनामा से स्पष्ट होता है कि उनके पूर्वज अरब थे। मलिक के माता- पिता जापान के कचाने मुहल्ले में रहते थे। इनके पिता का नाम मलिक शेख ममरेज था, जिनको लोग मलिक राजे अशरफ भी कहा करते थे। इनकी माँ मनिकपुर के शेख अलहदाद की पुत्री थी।

मलिक का जन्म

मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म 900 हिजरी (सन् 1492 के लगभग) हुआ माना जाता है। जैसा कि उन्होंने खुद ही कहा है –

या अवतार मोर नव सदी।
तीस बरस ऊपर कवि बदी।।

कवि की दूसरी पंक्ति का अर्थ यह है कि वे जन्म से तीस वर्ष पीछे अच्छी कविता कहने लगे। जायसी अपने प्रमुख एवं प्रसिद्ध ग्रंथ पद्मावत के निर्माण- काल के संबंध में कहा है –

सन नव सै सत्ताइस अहा।
कथा आरंभ बैन कवि कहा।।

इसका अर्थ यह है कि 'पदमावत' की कथा के प्रारंभिक वचन कवि ने सन 927 हिजरी (सन् 1520 ई. के लगभग) में कहा था। ग्रंथ प्रारंभ में कवि ने 'शाहे वक्त' शेरशाह की प्रशंसा की है, जिसके शासनकाल का आरंभ 947 हिजरी अर्थात् सन् 1540 ई. से हुआ था। उपर्युक्त बात से यही पता चलता है कि कवि ने कुछ थोड़े से पद्य 1540 ई. में बनाए थे, परंतु इस ग्रंथ को शेरशाह के 19 या 20 वर्ष पीछे समय में पूरा किया होगा।

जायसी का जन्म स्थान

जायसी ने पद्मावत की रचना जायस में की –

जाएस नगर धरम् अस्थान।
तहवां यह कबि कीन्ह बखानू।।

जायसी के जन्म स्थान के विषय में मतभेद है कि जायस ही उनका जन्म स्थान था या वह कहीं और से आकर जायस में बस गए थे। जायसी ने स्वयं ही कहा है –

जायस नगर मोर अस्थानू।
नगर का नवां आदि उदयानू।।
तहां देवस दस पहुँचे आएउं।।
या बेराग बहुत सुख पाय

जायस वालों और स्वयं जायसी के कथानुसार वह जायस के ही रहने वाले थे। पं. सूर्यकांत शास्त्री ने लिखा है कि उनका जन्म जायस शहर के 'कंचाना मुहल्ला' में हुआ था। कई विद्वानों ने कहा है कि जायसी गाजीपुर में पैदा हुए थे। मानिकपुर में अपने ननिहाल में जाकर रुके थे।

डा. वासदेव अग्रवाल के कथन व शोध के अनुसार –

जायसी ने लिखा है कि जायस नगर में मेरा जन्म स्थान है। मैं वहाँ दस दिनों के लिए पाहुने के रूप में पहुँचा था, पर वहीं मुझे वैराग्य हो गया और सुख मिला।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी का जन्म जायस में नहीं हुआ था, बल्कि वह उनका धर्म-स्थान था और वह वहीं कहीं से आकर रहने लगे थे।

मलिक मुहम्मद जायसी का व्यक्तित्त्व

जैसा कि नाम से मालूम पड़ता है कि मलिक जायस के रहने वाले थे। जायस में रहते- रहते वह कुछ दिनों के लिए इधर- उधर भी गए। कुछ दिनों के बाद वह जायस दोबारा वापस आए थे। इस बात का संकेत उन्होंने स्वयं किया है –

जायस नगर धरम अस्थानू।
तहां आई कवि किंह बखानू।।

जायस के लोगों के अनुसार वह जायस के ही रहने वाले थे। वहाँ के लोग इनका घर का स्थान अब भी दिखाते हैं। अपनी प्रसिद्ध ग्रंथ पद्मावत में जायसी ने अपने चार मित्रों का जिक्र किया है, वह हैं - युसूफ मलिक, सालार खादिम, सलोनों मियां और बड़े शेख। ये चारों जायस के ही रहने वाले थे। सलोनों मियां

के संबंध में आज तक जायस में यह जनश्रुति चली आ रही है कि वे बहुत बलवान थे।

मलिक कुरूप और काने थे, कुछ लोगों के अनुसार वह जन्म से ही काने थे। इस संबंध में अधिकतर लोगों का कहना है कि शीतलता या अर्द्वेग रोग से उनका शरीर विकृत हो गया था। जनश्रुति है कि बालक मुहम्मद पर शीतला का भयंकर प्रकोप हुआ, जिससे माता- पिता को निराशा हुई। माँ ने पाक- साफ दिल से शाहमदार की मनौती की। पीर की दुआ से बालक बच गया, किंतु बीमारी के कारण उनकी एक आँख चली गयी। उसी ओर का बायां कान भी नाकाम हो गया। अपने काने होने का उल्लेख उन्होंने स्वयं ही किया है –

एक नयन कवि मुहम्मद गुमी।
सोइ बिमोहो जेइ कवि सुनी॥
चांद जइस जग विधि ओतारा।
दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा॥
जग सुझा एकह नैनाहां।
उवा सूक अस नखतन्ह मांहां॥
जो लहिं अंबहिं डाभ न होई।
तो लाहि सुगंध बसाई न सोई॥
कीन्ह समुद्र पानि जों खारा।
तो अति भएउ असुझ अपारा॥
जो सुमेरु तिरसूल बिना सा।
भा कंचनगिरि लाग अकासा॥
जौं लहि घरी कलंक न परा।
कांच होई नहिं कंचन करा॥
एक नैन जस दापन, और तेहि निरमल भाऊ।
सब रुपवंत पांव जहि, मुख जोबहिं कै चाउ॥
मुहम्मद कवि जो प्रेम या, ना तन रकत न मांस।
जेइं मुख देखा तइं हंसा, सुना तो आये आंहु॥

उपर्युक्त पंक्तियों से अनुमान होता है कि बाएं कान से भी उन्हें कम सुनाई पड़ता था। एक बार जायसी शेरशाह के दरबार में गए, तो बादशाह उनका मुँह देखकर हँस दिया। जायसी ने शांत भाव से पूछा –

मोहि कां हससि कि कोहरहि?
अर्थात् तू मुझ पर हंसा या उस कुम्हार पर,
इस पर शेरशाह ने लज्जित होकर क्षमा माँगी।

जायसी का बचपन

जायसी बाल्यावस्था में ही अनाथ हो गये और साधु- फकीरों के साथ दर- दर भटकते फिरते थे। जायसी ने अपने बचपन के कुछ दिन अपने ननिहाल मानिकपुर में गुजारे। आपको एक साथ कई प्रकार की कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। एक तो आप अनाथ, दीन- हीन अवस्था, दूसरे साधू- फकीरों का संग। इसके साथ इनकी तीव्र बुद्धि और सर्वोपरि सहजात ईश्वरीय प्रेम, इन सभी ने मिलकर आपको अंतर्मुखी और चिंतनशील बना दिया। आपने अपनी सारी शक्ति परम सत्ता की ओर लगा दी। संयोगवश आपको इसमें कामयाबी भी मिली।

जायसी की विशेषताओं को परख कर मीर हसन देहलवी ने लिखा है –

थे मलिक नाम मुहम्मद जायसी।
वह कि पद्मावत जिन्होंने हे सिखी॥
मर्दे आरिफ थे वह और साहब कमाल।
उनका अकबर ने किया दयाफ्त हाल॥
होके मुश्ताक बुलवाया सिताब।
ताकि हो सोहबत से उनकी फेजयाब॥
साफ बातिन थे वह और मस्त- अलमस्त।
लेकिन दुनिया तो है, जाहिर परस्त॥
थे बहुत बद्शकल और वह बदकवी।
देखते ही अकबर उनको हंस पड़ा॥
जो हंसा वह तो उनको देखकर।
यों कहा अकबर को होकर चश्मतर॥
हंस पड़े भारी पर ऐ तु शहरयार।
याकि मेरे पर हंसे अख्तियार॥
कुछ गुनाह मेरा नहीं ऐ बादशाह।
सुर्ख बासन तु हुआ और मैं स्याह॥
असल में माटी तो है सब एक जात।
अख्तियार उसका है गो है उसके हाथ॥

सुनते ही यह हर्फ रोया दादगर।
गिर पड़ा उनके कदम पर आनकर॥
अलगराज उनको व एगाजे तमाम।
उनके घर भिजवा दिया फिर वस्सलाम॥
साहबे तासिर हैं, जो ऐ हसन।
दिल पर वारता है असर उनका सुखन॥

जायसी एक किसान

मलिक मुहम्मद जायसी एक गृहस्थ किसान के रूप में ही जायस में रहते थे। वे आरंभ से बड़े ईश्वर भक्त और साधु प्रकृति के माने जाते हैं। उनकी यह आदत थी कि जब वह अपने खेतों में होते, तो अपना खाना वहीं मंगा लेते थे। वह अपना खाना अकेले कभी नहीं खाते थे। इस क्रम में जो भी आसपास मिलता, उसे बुलाकर अपने साथ बैठाकर खाना खिलाते थे। एक बार वह अपना खाना लेकर काफी देर तक बैठे रहे और किसी के आने का इंतजार करते रहे। बहुत देर के बाद एक कोढ़ी दूर दिखाई दिया। जायसी ने उसे पास बुलाया और बड़े प्यार से अपने साथ खाने को कहा और दोनों एक ही बरतन में खाना खाने बैठ गए। दूसरे व्यक्ति के शरीर से कोढ़ चू रहा था। उसके शरीर का थोड़ा मवाद उसके खाने में गिर पड़ा। जायसी ने उस अंश को खुद खाने के लिए उठाया, पर उस कोढ़ी ने उसका हाथ थाम लिया और स्वयं खाने को कहा। जायसी को साफ हिस्सा खाने का इशारा किया। जायसी ने झट से उस अंश को खा लिया।

इस घटना का उस कोढ़ी पर बहुत प्रभाव पड़ा और वह जायसी के पीछे हो गया। इस घटना के उपरांत जायसी की मनोवृति ईश्वर की और भी अधिक हो गई। उक्त घटना की ओर संकेत इस प्रकार किया गया है-

बुंढहिं समुद समान, यह अचाज कासों कहो।
जो हेरा सो हैरान, मुहम्मद आपुहि आपु महै॥

जायसी एक सच्चे भक्त थे। वे बड़े ही सच्चरित्र, कर्तव्य- निष्ठ और गुरु भक्त थे। ईश्वर के प्रति उनकी आस्था अपार थी। उनका विश्वास था कि परम ज्योति स्वरूप उस जगत के करतार के नियंत्रण में ही समस्त सृष्टि वर्तमान है, गतिमान है। वे महान संत थे। सहजता, सहृदयता, सारग्रहिता, अन्यवगम्यीरता, लोक और काव्य का गहन अध्ययन, आडम्बर- हीनता, संयम और पवित्र भक्ति

उनके चरित्र के विशेष आकर्षण हैं। इनके हृदय की नम्रता अपार थी। वे अपने विषय में गर्वोक्ति नहीं लिखते। वे स्पष्ट कहते हैं–

हौं सब कविन केर पछिलगा।
किछु कहि चला तबल देई डगा।

उनका कहना है कि मैं सभी कवियों के पीछे चलने वाला हूँ। नन्कारे की ध्वनि हो जाने पर मैं भी आगे वालों के साथ पैर बढ़ाकर कुछ कहने को चल पड़ा हूँ। इस बात को सभी विद्वानों ने साफ कर दिया है कि उनके समस्त काव्य में एक उक्ति भी निज के विषय में गर्व की नहीं है।

जायसी इस्लाम धर्म और पैगम्बर पर पूरी आस्था रखते थे। उन्होंने ईश्वर तक पहुँचने के लिए अनेक मार्गों को स्वत: स्वीकार किया है। इन असंख्य मार्गों में वह मुहम्मद साहब के मार्ग को सरल एवं सुगम कहते थे।

विधिना के मारग हे ते ते।
सरग नखत, तन रोवां जेते॥
तिन्ह मह पंथ कहों भल भाई।
जेहि दूनों जग छाज बढ़ाई॥
सं बड़ पन्थ मुहम्मद केरा।
है निरमल कविलास बसेरा॥

जायसी बड़े भावुक भगवद्भक्त थे और अपने समय में बड़े ही सिद्ध और पहुँचे हुए फकीर माने जाते थे। वे विधि पर आस्था रखनेवाले थे। सच्चे भक्त का प्रधान गुण दैन्य उनमें पूरा- पूरा था। उनकी वह उदारता थी, जिससे कट्टरपन को भी चोट नहीं पहुँच सकती थी। प्रत्येक प्रकार का महत्व स्वीकार करने की उनमें क्षमता थी। वीरता, धीरता, ऐश्वर्य, रूप, गुण, शील सबके उत्कर्ष पर मुग्ध होनेवाला हृदय उन्हें प्राप्त था। वे जो कुछ जानते थे, उसे नम्रतापूर्वक पण्डितों का प्रसाद मानते थे।

जायसी के पुत्र

यह माना जाता है कि जायसी को सात पुत्र थे। ये सातों पुत्र एक साथ मकान के नीचे दबकर या इस जैसी किसी घटना में मर गए। इस घटना ने जायसी को संसार से और भी विरक्त कर दिया और वह कुछ दिनों में घर बार छोड़कर इधर- उधर फकीर होकर घूमने लगे।

जायसी का विराग – जायसी के विराग का कारण भी कुछ इस प्रकार की घटना ही होगी, जिसने उसे प्रेमानुभव के एक नवीन लोक में पहुँचा दिया, उनके हृदय में विराग का एक स्रोत फूट पड़ा। उनका हृदय किसी अपूर्व ज्योति से उद्‌भासित हो उठा। उसी का रूप नयनों में समा गया। सर्वत्र उसी सौंदर्य और प्रेम सत्ता के दर्शन होने लगे। संसार के मापदंड बदल गए। विषयों से मन हट गया। हृदय में एक ही आकुलता छा गई कि किस प्रकार उसे परम ज्योति या रूप की साक्षात प्राप्ति हो। जायसी ने अपनी उस वैराग्य- अवस्था का सच्चा वर्णन किया है –

तहां दवस दस पहुनें आए
भा बेराग बहुत सुख पाएउ॥
सुख भा सोच एक दुख मानो।
ओहि बिनु जिबन मरन के जानों॥
नैन रूप सो गएऊ समाई।
रहा पूरि भरि हिरदे छाई॥
जहवैं देखौं तंहवैं सोई।
आर न आव दिस्ट तर कोई॥
आपुन देखि देखि मन राखौं।
दूसर नाहिं सो कासों भाखों॥
सबै जगत दरपन कर लेखा।
आपनु दर्सन आपुहि देखा॥

उपर्युक्त से यह आशय स्पष्ट होता है कि वैराग्य की तीव्रधारा के स्पर्श से एक बार ही उनका आनंद प्लावित हो गया। प्रियतम का, जो रूप नयनों में समा गया था, वहीं भीतर और बाहर का आनंद था और यही मिलन की वेदना का कारण बना। सचमुच वैराग्य के अनंतर जायसी को महान आत्मिक सुख मिला होगा। उन्होंने परमात्म- तत्त्व के दर्शन अवश्य किए थे। उसे उन्होंने विश्व के कण- कण में देखा और अनुभव किया था।

जायसी गुरु-परंपरा

मलिक मुहम्मद जायसी निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परंपरा में थे। इस परंपरा की दो शाखाएँ मानी जाती है – एक मनिकपुर कालापी और दूसरी जायसी

की। जायसी ने पहली शाखा के पीरों की परंपरा का उल्लेख काफी प्रशंसनीय अंदाज से किया है।

पद्मावत और अखरावत दोनों में जायसी ने मानिकपुर कालापी वाली गुरु परंपरा का उल्लेख विस्तार से किया है। शेख महदी को ही जायसी का दीक्षा गुरु माना जाता है। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** के अनुसार इस बात का ठीक-ठीक अंदाज नहीं होता है कि जायसी मानिकपुर के मुहीउद्दीन के मुरीद थे या जायस के अशरफ जहाँगीर के।

पद्मावत के दोनों पीरों के बारे में इस प्रकार उल्लेख किया गया है –

सैय्यद अशरफ पीर प्यारा।
जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा।।
गुरु मोहिदी सेवक में सेवा।
चले उताइल जेहिका सेवा।।

'आखिरी कलाम' में जायसी ने केवल सैय्यद अशरफ जहाँगीर का ही उल्लेख किया है। पीर शब्द का प्रयोग भी इन्हीं के नाम के पहले प्रयोग किया गया है। जायसी ने खुद को अशरफ जहाँगीर के घर का बंदा बताया है। इससे इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि जायसी के दीक्षा गुरु सैय्यद अशरफ जहाँगीर ही थे। इन्होंने बाद में शेख मेहदी की सेवा करके बहुत कुछ सीखा होगा।

सैय्यद अशरफ एक महान सूफी संत थे और उनकी मृत्यु 808 हिजरी में हुई थी। जायसी अशरफ की मृत्यु के काफी बाद अवतार प्राप्त हुए थे। जायसी ने उन्हें पूज्य पीर माना है। उन्होंने पद्मावत में ही अपने गुरु- परंपरा और अपने गुरु की बात स्पष्ट रूप से लिख दी है –

सैय्यद अशरफ पीर पियसरा।
तिंह मोहिं पंथ दीन्द उजियारा।।
जहाँगीर ओई चिस्ती, निहकलंक जस चाँद।
ओइ मखदूम जगत के हौं उन्हके घर बांद।।

जायसी के अनुसार सैय्यद अशरफ जहाँगीर चिश्ती वंश के थे ओर चाँद जैसे निष्कलंक थे। वे जगत के मखदूम (स्वामी) थे और मैं उनके घर का सेवक हूँ।

इससे स्पष्ट है कि जायसी स्वयं को उनके घर का सेवक के रूप में मानते थे। वे आगे कहते हैं –

उन्ह घर रतन एक निरमरा।
हाजी शेख सभागाई भरा॥
तिन्ह घर ढ़??? दीपक उजियारे।
पंथ देइ कहं दइअ संवारे॥
संख मुबारक पूनिउं करा।
सेख कमाल जगत निरमरा॥
मुहम्मद तहां निचिंत पथ जोहि संग मुरसिद पीर।
जेहि रे नाव करिआ औ खेवक बेग पाव सो तीर॥

जायसी कहते हैं, सैय्यद अशरफ जहाँगीर के घर में एक निर्मल रत्न 'हाजी शेख' हुआ, जो सौभाग्य संपन्न था। उनके घर में मार्ग दिखलाने के लिए दो उज्ज्वल दीपक संवारे। एक शेख मुबारक, जो पूनम की कला के समान था और दूसरा शेख कमाल, जो संसार भर में निर्मल था। मलिक मुहम्मद का कहना है कि विश्व में जिसके संग मुरशिद और पीर हों, वह मार्ग में निश्चिंत रहता है, जिसकी नाव में पतवारिया और खवैया दोनों हों, वह शीघ्र तीर पर पहुँच जाता है।

पद्मावत में एक स्थान पर जायसी लिखते हैं --

गुरु मोददी खेवक मैं सेवक।
चलै उताइल जिन्ह कर खेवा॥
अगुआ भएउ सेख बुरहानू।
पंथ लाइ जहिं दीन गियानू॥
अलहदाद भ तिन्हकर गुरु।
दीन दुनिअ रोसन सुरखरु॥
सैय्यद अहमद के ओइ चेला।
सिद्ध पुरुष संघ जेहिं खेला॥
दानिआल गुरु पंथ लखाए।
हजरति ख्वाज खिजिर तिन्ह पाए॥
भए परसन ओहि हजरत ख्वाजे।
लई मेर जहं सैय्यद राजे॥
उन्ह सोमै पाइ जब करनी।
उधर जीभ प्रेम कवि बरनी॥
ओइ लौ गुरु हौं चेला निति बिनबौं भर चेर।
उन्ह हुति देखइ पावौं दास गोसाइ केर॥

गुरु मोहदी खेने वाले हैं। मैं उनका चेला हूँ। शेख बुरहान अगुआ हैं। उन्होंने मार्ग पर लाकर ज्ञान दिया। बुरहान के गुरु अलहदाद थे, वे हमारे गुरु हैं। मैं उनका सेवक हूं। मैं नित्य उनका सेवक बनकर उनकी वंदना करता हूँ। उनकी ही कृपा से मैं भगवान का दर्शन पा सकूँगा।

जायसी की काव्य रचना

साहित्यिक विद्वानों तथा अनेकों शोधकर्ताओं के साक्ष्या की बुनियाद पर जायसी की निम्नलिखित काव्य रचनाएँ हैं–

1. पद्मावत,
2. अखरावट,
3. सखरावत,
4. चंपावत,
5. इतरावत,
6. मटकावत,
7. चित्रवत,
8. सुर्वानामा,
9. मोराईनामा,
10. मुकहरानामा,
11. मुखरानामा,
12. पोस्तीनामा,
13. होलीनामा,
14. आखिरी कलाम,
15. धनावत,
16. सोरठ,
17. जपजी,
18. मैनावत,
19. मेखरावटनामा,
20. कहरानामा,
21. स्फुट कवितायें,
22. लहतावत,

23. सकरानामा, और
24. मसला या मसलानामा।

कहरानामा में आले मुहम्मद की सूची दी गई है। कहा जाता है कि पास्तीनामा अपने गुरु के अमल पर व्यंग करते हुए लिखा था। जब जायसी ने यह कृति पूरी की, तो इसे अपने गुरु के सामने प्रस्तुत किया, इनके गुरु बहुत नाराज हुए। उन्होंने नाराज होकर जायसी को शाप दे डाला कि तुम्हारे सातों बच्चे छत गिरने से मर जायेंगे। इसी शाप के कारण इनके सातों बच्चे प्राणांत कर गए। इसके साथ ही गुरु ने यह भी कहा था कि जायसी तुम्हारा नाम तुम्हारे चौदह ग्रंथों के द्वारा जिंदा रहेगा। अंत में यह सब वैसा ही हुआ।

मुसलमानी धर्म के विविध अंगों पर काव्य लिखने की परंपरा जायसी ने ही आरंभ की थी, जो बाद तक चली आ रही है। 'आखरी कलाम' में जायसी ने कयामत के दिन का चित्रण काफी सुंदरता से किया है।

जायसी का खुद के बारे में कथन

जायसी सैय्यद अशरफ को प्यारे पीर मानते हैं और स्वयं को उनके द्वार का मुरीद बताते हैं। उनकी काव्य शैली में –

सो मोरा गुरु तिन्ह हों चला।
धोवा पाप पानिसिर मेला।।
पेम पियालाया पंथ लखावा।
अरपु चाखि मोहिं बूँद चखावा।।
जो मधु चढ़ा न उतरइ कावा।
परेउ माति पसउं फेरि अरवा।।

एक स्थान पर वो अपने बारे में काफी विनम्र भाव से कहते हैं–

मुहमद मलिक पेम मधुभोरा।
नाउँ बड़ेरा दरसन थोरा।।
जेव- जेंव बुढ़ा तेवं- तेवं नवा।
खुदी कई ख्याल न कवा।।
हाथ पियाला साथ सुरांई।
पेम पीतिलई आरे निबाही।।
बुधि खोई और लाज गँवाई।
अजहूँ अइस धरी लरिकाई।।

पता न राखा दुहवई आंता।
माता कलालिन के रस माता।।
दूध पियसववइ तेस उधारा।
बालक होई परातिन्ह बारा।।
खउं लाटउं चाहउं खेला।
भएउ अजान चार सिर मेला।।
पेम कटोरी नाइके मता पियावइ दूध।
बालक पीया चाहइ, क्या मगर क्या बूध।।

इस पंक्तियों से लगता है कि ये प्रेम- मधु के भ्रमर थे। उनका नाम तो बहुत बड़ा था, पर वह दरसन थोड़ा थे। ज्यों- ज्यों वृद्धा अवस्था आ रही थी, त्यों- त्यों उनमें अभिनवता का सन्निवेश हो रहा था। जायसी संसार को अस्थिर मानते थे, उनके हिसाब से प्रेम और सद्भाव ही स्थिर है या रहेगा, जबकि संसार की तमाम वस्तुएँ अस्थिर है। जायसी ने संसार की अस्थिरता का वर्णन अन्य स्थल पर इस प्रकार किया है -

यह संसार झूठ थिर नाहिं।
तरुवर पंखि तार परछाहीं।।
मोर मोर कइ रहा न कोई।
जाऐ उवा जग अथवा सोई।।
समुद्र तरंग उठै अद्य कूपा।
पानी जस बुलबुला होई।
फूट बिस्मादि मिलहं जल सोई।।
मलिक मुहम्मद पंथी घर ही माहिं उदास।
कबहूँ संवरहि मन कै, कवहूँ टपक उबास।।

एक स्थान पर चित्ररेखा में उन्होंने अपने बारे में लिखा है -

मुहमद सायर दीन दुनि, मुख अंब्रित बेनान।
बदन जइस जग चंद सपूरन, एक जइस नेनान।

जायसी की प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

अखरावट जायसी कृत एक सिद्धांत प्रधान ग्रंथ है। इस काव्य में कुल 54 दोहे 54 सोरठे और 317 अर्द्धलियां हैं। इसमें दोहा, चौपाई और सोरठा छंदों का प्रयोग हुआ है। एक दोहा पुनः एक सोरठा और पुनः 7 अर्द्धलियों के क्रम का

निर्वाह अंत तक किया गया है। अखरावट में मूलत: चेला गुरु संवाद को स्थान दिया गया है।

अखरावट का रचनाकाल

अखरावट के विषय में जायसी ने इसके काल का वर्णन कहीं नहीं किया है। सैय्यद कल्ब मुस्तफा के अनुसार यह जायसी की अंतिम रचना है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अखरावट पद्मावत के बाद लिखी गई होगी, क्योंकि जायसी के अंतिम दिनों में उनकी भाषा ज्यादा सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित हो गई थी, इस रचना की भाषा ज्यादा व्यवस्थित है। इसी में जायसी ने अपनी वैयक्तिक भावनाओं का स्पष्टीकरण किया है। इससे भी यही साबित होता है, क्योंकि कवि प्राय: अपनी व्यक्तित्त्व भावनाओं का स्पष्टीकरण अंतिम में ही करता है।

मनेर शरीफ से प्राप्त पद्मावत के साथ अखरखट की कई हस्तलिखित प्रतियों में इसका रचना काल दिया है। 'अखरावट' की हस्तलिखित प्रति पुष्पिका में जुम्मा 8 जुल्काद 911 हिजरी का उल्लेख मिलता है। इससे अखरावट का रचनाकाल 911 हिजरी या उसके आस पास प्रमाणित होता है।

अखरावट का कथावस्तु –

1. सृष्टि

अखरावट के आरंभ में जायसी ने इस्लामिक धर्मग्रंथों और विश्वासों के आधार पर आधारित सृष्टि के उद्भव तथा विकास की कथा लिखी है। उनके इस कथा के अनुसार सृष्टि के आदि में महाशून्य था, उसी शून्य से ईश्वर द्वारा सृष्टि की रचना की गई हैं। उस समय गगन, धरती, सूर्य, चंद्र जैसी कोई भी चीज मौजूद नहीं थी। ऐसे शून्य अंधकार में सबसे पहले पैगम्बर मुहम्मद की ज्योति उत्पन्न की –

गगन हुता नहिं महि दुती, हुते चंद्र नहिं सूर
ऐसइ अंधकूप महं स्पत मुहम्मद नूर॥

कुरान शरीफ एवं इस्लामी रवायतों में यह कहा जाता है कि जब कुछ नहीं था, तो केवल अल्लाह था। प्रत्येक जगह घोर अंधकार था। भारतीय साहित्य में भी इस संसार की कल्पना 'अश्वत्थ' रूप में की गई है।

सातवां सोम कपार महं कहा जो दसवं दुवार।
जो वह पवंकिरं उधारै, सो बड़ सिद्ध अपार॥

इस पंक्तियों में जायसी ने मनुष्य शरीर के परे, गुद्येन्द्रिय, नाभि, स्तन, कंठ, भौंहों के बीच के स्थान और कपाल प्रदेशों में क्रमशः शनि, वृहस्पति, मंगल, आदित्य, शुक्र, बुध और सोम की स्थिति का निरोपण किया है। ब्रह्म अपने व्यापक रूप में मानव देह में भी समाया हुआ है –

माथ सरग घर धरती भयऊ।
मिलि तिन्ह जग दूसर होई गयऊ॥
माटी मांसु रकत या नीरु।
नसे नदी, हिय समुद्र गंभीरु॥

इस्लामी धर्म के तीर्थ आदि का भी कवि ने शरीर में ही प्रदर्शित किया है–

सातौं दीप, नवौ खंड आठो दिशा जो आहिं।
जो ब्राह्मड सो पिंड है हेरत अंत न जाहिं॥
अगि, बाड, धुरि, चारि मरइ भांड़ा गठा।
आपु रहा भरि पूरि, मुहमद आपुहिं आपु महं॥

कवि के अनुसार शरीर को ही जग मानना चाहिए। धरती और आकाश इसी में उपस्थित है। मस्तक, मक्का तथा हृदय मदीना है, जिसमें नवी या पैगम्बर का नाम सदा रहता है। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं को भी इसी प्रकार निर्देशित किया गया–

नाकि कंवल तर नारद लिए पांच कोतवार।
नवो दुवारि फिरै निति दसई कारखवार॥

अर्थात्, नाभि कमल के पास कोतवाल के रूप में शैतान का पहरा है।

जीव ब्रह्म

मलिक मुहम्मद जायसी के कथनानुसार ब्रह्मा से ही यह समस्त सृष्टि आपूर्ति की गयी है। उन्होंने आगे फरमाया कि जीव बीज रूप में ब्रह्मा में ही था, इसी से अठारह सहस्त्र जीवयोगियों की उत्पत्ति हुई है –

वै सब किछु करता किछु नाहीं।
जैसे चलै मेघ परिछाही॥
परगट गुपुत विचारि सो बूझा।
सो तजि दूसर और न सूझा॥

जीव पहले ईश्वर में अभिन्न था। बाद में उसका बिछोह हो गया। ईश्वर का कुछ अंश घट- घट में समाया है–

सोई अंस छटे घट मेला।
जो सोइ बरन- बरन होइ खेला॥

जायसी बड़ी तत्परता से कहते हैं कि संपूर्ण जगत ईश्वर की ही प्रभुता का विकास है। कवि कहता है कि मनुष्य पिंड के भीतर ही ब्रह्म और समस्त ब्रह्माण्ड है, जब अपने भीतर ही ढूँढ़ा तो वह उसी अनंत सत्ता में विलीन हो गया–

बुंदहिं समुद्र समान, यह अचरज कासों कहों।
जो हेरा सो हैरान, मुहमद आपुहि आप महं॥

इससे आगे कवि कहता है कि 'जैसे दूध में घी और समुद्र में पोती की स्थिति है, वही स्थिति वह परम ज्योति की है, जो जगत भीतर- भीतर भासित हो रही है। कवि कहता है कि वस्तुत: एक ही ब्रह्म के चित अचित् दो पक्ष हुए, दोनों पक्षों के भीतर तेरी अलग सत्ता कहाँ से आई। आज के सामाजिक परिदृश्य में उनका यह प्रश्न अधिक उचित है -

एक हि ते हुए दोइ, दुइ सौ राज न चलि सके।
बीचतें आपुहि खोइ, मुहम्मद एकै होइ रहु॥

साधना

'प्रेम- प्रभु' की साधना ही सूफी साधना है। इसके अन्तर्गत साधक अपने भीतर बिछुड़े हुए प्रियतम के प्रति प्रेम की पीर को जगाता है। पहले जीव- ब्रह्मा एक थे। वह पुन: अपने बिछुड़े हुए प्रियतम से मिलकर अभेदता का आनंद पाना चाहता है।

हुआ तो एक ही संग, हम तुम काहे बिछुड़े।
अब जिउ उठै तरंग, महमद कहा न जाईन किछु॥

कबीर की तरह जायसी भी प्रेम को अत्यंत ही महत्वपूर्ण बताते हुए कहते हैं–

परै प्रेम के झेल, पिउ सहुँ धनि मुख सो करे।
जो सिर संती खेल, मुहम्मद खेल हो प्रेम रस॥

जायसी के कथनानुसार किसी सिद्धांत विशेष का यह कहना कि ईश्वर ऐसा ही है, भ्रम है -

सुनि हस्ती का नाव अंधरन रोवा धाइ के।
जेइ रोवा जेइ ठांव मुहम्मद सो तेसे कहे॥

इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक मत में सत्य का कुछ- न- कुछ अंश रहता है।

जायसी भी मुहम्मद के मार्ग को श्रेष्ठ मानते हुए भी विधना के अनेक मार्गों को स्वीकार करते हैं। वह अपने लेखन में या साधना में एक सिद्धांत में बंधना नहीं चाहते हैं। जायसी अपनी उदास और सारग्रहिणी बुद्धि के फलस्वरूप योग, उपनिषद्, अद्वैतवाद, भक्ति, इस्लामी एकेश्वरवाद आदि से बहुत कुछ सीखते हैं। वे कहते हैं कि वह सभी तत्त्व जो ग्राम्ह हैं, प्रेम की पीर जगाने में समर्थ है। ब्रह्मवाद, योग और इस्लामी- सूफी सिद्धांतों का समन्वय जायसी की अपनी विशेषता है। अखरावट में वह कहते हैं–

मा- मन मथन करै तन खीरु।
हुहे सोइ जो आपु अहिरु॥
पाँचों भुत आनमहि मारैं।
गरग दरब करसी के जारे॥
मन माठा- सम अस के धोवै।
तन खेला तेहि माहं बिलोबे॥
जपहु बुद्धि के दुइ सन फरेहु।
दही चूर अस हिंया अभेरहु॥
पछवां कदुई केसन्ह फेरहु।
ओहि जोति महं जोति अभेरहु॥
जस अन्तपट साढ़ी फूटे।
निरमल होइ मयां सब टूटे॥
मखनमूल उठे लेइ जोति।
समुद माहं जस उलटे कोती॥
जस घिड़ होइ मराइ के, तस जिऊ निरमल होइ।
महै महेरा दूरि करि, भोग कर सुख सोइ॥

अद्वैतवाद के आधार पर ही जायसी मूल्यत: अपने अध्यात्म जगत का निर्माण किया है–

अस वह निरमल धरति अकासा।
जैसे मिली फूल महं बरसा॥

सबै ठांव ओस सब परकारा।
ना वह मिला, न रहै निनारा॥
ओहि जोति परछाहीं, नवो खण्ड उजियार।
सुरुज चाँद कै जोती, उदित अहै संसार॥

अखरावट में जायसी ने उदारतापूर्वक इस्लामी भावनाओं के साथ भारतीय हिंदू भावनाओं के सामंजस्य का प्रयत्न किया है। जायसी इस्लाम पर पूर्ण आस्था रखते थे, किंतु उनकी यह इस्लाम भावना सूफी मत की नवीन व्यवस्थाओं से संबंधित है। उनका इस्लाम योगमत योगाचार- विधानों से मण्डित है और हिंदू-मुस्लिम दोनों एक ब्रह्म की संतान हैं, की भावना से अलंकृत है। ब्रह्मा विष्णु और महेश के उल्लेख 'प्रसंग वश' 'अल्लिफ एक अल्लाह बड़ मोइ' केवल एक स्थान पर अल्लाह का नामोल्लेख, कुरान के लिए कुरान और पुराण के नामोल्लेख, स्वर्ग या बिहिश्त के लिए सर्वत्र कैलाश या कविलास के प्रयोग, अहं ब्राह्मास्मि या अनलहक के लिए सांह का प्रयोग, इब्लीस या शैतान के स्थान पर 'नारद' का उल्लेख, योग साधना के विविध वर्णन प्रभृति बातें इस बात की ओर इंगित करती है कि जायसी हिंदू- मुस्लिम भावनाओं में एकत्व को दृष्टि में रखते हुए समन्वय एवं सामंजस्य का प्रयत्न करते हैं। मलिक मुहम्मद जायसी ने हिंदू-मुस्लिम की एकता के विषय में अत्यंत नम्रंतापूर्वक कहा -

तिन्ह संतति उपराजा भांतिन्ह भांति कुलीन।
हिंदू तुरुक दुवौ भए, अपने अपने दीन॥
मातु कै रक्त पिता के बिंदू।
उपने दुवौ तुरुक और हिंदू॥

जायसी की यह सामंजस्य भावना उनके उदार मानवतावादी दृष्टिकोण की परिचायक है।

आखिरी कलाम

जायसी रचित महान ग्रंथ का सर्वप्रथम प्रकाशन फारसी लिपि में हुआ था। इस काव्य में जायसी ने मसनवी- शैली के अनुसार ईश्वर- स्तुति की है। अपने अवतार ग्रहण करने तथा भूकंप एवं सूर्य- ग्रहण का भी उल्लेख किया है। इस के अलावा उन्होंने मुहम्मद स्तुति, शाहतरत- बादशाह की प्रशस्ति और सैय्यद अशरफ की वंदना, जायस नगर का परिचय बड़ी सुंदरता से उल्लेख किया है। जैसा कि जायसी ने अपने काव्य अखरखट में संसार की सृष्टि के विषय में

लिखा था। इस आखिरी काव्य में जायसी ने आखिरी कलाम नाम के अनुसार संसार के खत्म होने एवं पुनः सारे मानवों को जगाकर उसे अपना दर्शन कराने एवं जन्नत की भोग विलास के सुपुर्द करने का उल्लेख किया है।

चित्ररेखा

जायसी ने पद्मावत की ही भांति 'चित्ररेखा' की शुरुआत भी संसार के सृजनकर्ता की वंदना के साथ किया है। इसमें जायसी ने सृष्टि की उद्भाव की कहानी कहते हुए करतार की प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा है। इसके अलावा इसमें उन्होंने पैगम्बर मुहम्मद साहब और उनके चार मित्रों का वर्णन सुंदरता के साथ किया है। इस प्रशंसा के बाद जायसी ने इस काव्य की असल कथा आरंभ की है।

इसकी कथा चंद्रपुर नामक एक अत्यंत सुंदर नगर के राजा, जिनका नाम चंद्रभानु था, की से प्रारंभ की गई है। इसमें राजा चंद्र भानु की चाँद के समान अवतरित हुई पुत्री चित्ररेखा की सुंदरता एवं उसकी शादी को इस प्रकार बयान किया है –

चंद्रपुर की राजमंदिरों में 700 रानियाँ थी। उनमें रूपरेखा अधिक लावण्यमयी थी। उसके गर्भ से बालिका का जन्म हुआ। ज्योतिष और गणक ने उसका नाम चित्ररेखा रखा तथा कहा कि इसका जन्म चंद्रपुर में हुआ है, किंतु यह कन्नौज की रानी बनेगी। धीरे- धीरे वह चाँद की कली के समान बढ़ती ही गयी। जब वह स्यानी हो गयी, तो राजा चंद्रभानु ने वर खोजने के लिए अपने दूत भेजे। वे ढूंढ़ते- ढूंढ़ते सिंहद देश के राजा सिंघनदेव के यहाँ पहुँचे और उसके कुबड़े बेटे से संबंध तय कर दिया।

कन्नौज के राजा कल्याणसिंह के पास अपार दौलत, जन व पदाति, हस्ति आदि सेनाएँ थी। तमाम संपन्नता के बावजूद उनके पास एक पुत्र नहीं था। घोर तपस्या एवं तप के पश्चात् उनके एक राजकुमार पैदा हुआ, जिसका नाम प्रीतम कुँवर रखा गया। ज्योतिषियों ने कहा कि यह भाग्यवान अल्पायु है। इसकी आयु केवल बीस वर्ष की है। जब प्रीतम को पता चला कि उसकी उम्र सिर्फ ढाई दिन ही रह गई है, तो उसने पूरा राजपाट छोड़ दिया और काशी में अंत गति लेने के लिए चल पड़ा।

रास्ते में राजकुमार की राजा सिंघलदेव से भेंट हो गयी। राजा सिंघलदेव ने राजकुमार प्रीतम कुँवर के पैर पकड़ लिए। उसकी पुरी और नाम पूछा तथा

विनती की, कि हम इस नगर में ब्याहने आए हैं। हमारा वर कुबड़ा है, तुम आज रात ब्याह कराकर चले जाना और इस प्रकार चित्ररेखा का ब्याह, प्रीतम सिंह से हो जाता है। प्रीतम सिंह को व्यास के कहने से नया जीवन मिलता है।

चित्ररेखा में प्रेम की सर्वोच्चता

जायसी प्रेम पंथ के महान साधक- संत थे। प्रेम पंथ में उन्होंने प्रेम पीर की महत्ता का प्रतिपादन किया है। व्यर्थ की तपस्या काम- क्लेश एवं बाह्याडम्बर को वह महत्वहीन मानते थे –

का भा पागट क्या पखारे।
का भा भगति भुइं सिर मारें॥
का भा जटा भभूत चढ़ाए।
का भा गेरु कापरि जाए॥
का भा भेस दिगम्बर छांटे।
का भा आयु उलटि गए कांटे॥
जो भेखहि तजि तु गहा।
ना बग रहें भगत व चहा॥
पानिहिं रहइं मंछि औदादुर।
टागे नितहिं रहहिं फुनि गादुर॥
पसु पंछी नांगे सब खरे।
भसम कुम्हार रहइं नित भरे॥
बर पीपर सिर जटा न थोरे।
अइस भेस की पावसि भोऐ॥
जब लगि विरह न होइ तन हिये न उपजइ प्रेम।
तब लगि हाथ न आव पत- काम- धरम- सत नेम॥

जायसी अपने समय के कृच्छ- काय- क्लेश और नाना विध बाह्याडम्बर को साक्ष्य करते हुए कहते हैं कि प्रकट भाव से काया प्रक्षालन से कोई फायदा नहीं हो सकता है। धरती पर सिर पटकने वाली साधना व्यर्थ है। जटा और भभूत बढ़ाने चढ़ाने का कोई मूल्य नहीं है। गैरिक वसन धारण करने से कुछ नहीं होता है। दिगम्बर योगियों का सा रहना भी बेकार हे। काँटे पर उत्तान सोना और साधक होने का स्वांग भरना निष्प्रयोजन है। देश त्याग का मौन व्रती होना भी व्यर्थ है। इस प्रकार के योगी की तुलना वर बगुला और चमगादड़ से करते हैं। वे कहते

हैं केश- वेश से ईश्वर कदापि नहीं मिलता है। जब वह विरह नहीं होता, हृदय में प्रेम की निष्पति नहीं हो सकती है। बिना प्रेम के तप, कर्म, धर्म और सतनेम की सच्चे अर्थों में प्राप्ति नहीं हो सकती है। जायसी सहजप्रेम विरह की साधना को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

कहरानामा

कहरानामा का रचना काल 947 हिजरी बताया गया है। यह काव्य ग्रंथ कहरवा या कहार गीत उत्तर प्रदेश की एक लोक- गीत पर आधारित में कवि ने कहरानामा के द्वारा संसार से डोली जाने की बात की है।

या भिनुसारा चलै कहारा होतहि पाछिल पहारे।
सबद सुनावा सखियन्ह माना, हंस के बोला मारा रे।।

जायसी ने हिंदी में कहरा लोक धुनि के आधार पर इस ग्रंथ की रचना करके स्वयं को गाँव के लोक जीवन एवं सामाजिक सौहार्द्र बनाने का प्रयत्न किया है। कहरानामा में कहरा का अर्थ कहर, कष्ट, दुख या कहा और गीत विशेष है। हमारे देश भारत ब्रह्म का गुणगान करना, आत्मा और परमात्मा के प्रेम परक गीत गाने की अत्यंत प्राचीन लोक परंपरा है।

कहरानामा की कथा

'कहरानामा' तीस पदों की एक प्रेम कथा है। इस कथानुमा काव्य में लेखक जायसी के कथानुसार संसार एक सागर के समान है। इसमें धर्म की नौका पड़ी हुई है। इस नौका का केवट एक ही है। वे कहते हैं कि कोई पंथ को तलवार की धार कहता है, तो कोई सूत कहता है। कोई इस सागर में तैरते हुए हार गया है और बीच में खड़ा है, कोई मध्य सागर में डूबता है और सीप ले आता है, कोई टकटोर करके छूंछे ही लौटता है, कोई हाथ- छोड़ कर पछताता है। जायसी बड़े ही अच्छे अंदाज में दुनिया की बेवफाई और संसार के लोगों की बेरुखी को जगजाहिर करते हैं-

जो नाव पर चढ़ता है, वह पार उतरता है और नख चले जाने पर, जो बांह उठाकर पुकारता है और केवट लौटता नहीं, तो वह पछताता है, ऐसे लोगों को 'मुखे अनाड़ी' कहते हैं। बहुत दूर जाना है, रोने पर कौन सुनता है। जो गाँट पूरे हैं, जो दानी हैं, उन्हें हाथ पकड़ कर केवट नाव पर चढ़ा लेता है, वहाँ कोई भाई, बंधु और सुंघाती नहीं। जायसी कहते हैं कि साधक को इस संसार में परे

संभाल कर रखना चाहिए अन्यथा पदभ्रंश होने का भय है। जायसी ने योग युक्ति, मन की चंचलता को दूर करने, भोगों से दूर रहने और प्रेम प्रभु में मन रमाने की बातें कहीं हैं। इससे आगे वे कहते हैं, ईश्वर जिसे अपना सेवक समझता है, उसे वह भिखारी बना देता है।

जो सेवक आपून के जानी
तेहि धरि भीख मंगावे रे।
कबिता पंडित दूक्ख- दाद महं,
मुरुख के राज करावै रे॥
चनदन गहां नाग हैं तहवां।
जदां फूल तहां कंटा रे॥
मधू जहवां है माखी तहवा,
गुर जहवा तहं चांटा रे॥

कहरानामा में कहारों के जीवन और वैवाहिक वातावरण के माध्यम से कवि ने अपने आध्यात्मिक विचारों को अभिव्यक्त किया है –

या भिनुसारा चलै कंहारा, होता हि पाछिल पहरारे
सखी जी गवहि हुडुक बाजाहिं हंसि के बोला मंहा रे॥
हुडुक तबर को झांझ मंजीरा, बांसुरि महुआ बाज रे।
सेबद सुनावा सखिन्ह गावा, घर- घर महरीं साजै रे।
पुजा पानि दुलहिन आनी, चुलह भा असबारा रे॥
बागन बाजे केवट साजै
या बसंत संसारा रे।
मंगल चारा होइझंकारा
औ संग सेन सेहली रे।
जनु फुलवारी फुलीवारी
जिनकर नहिं रस केली रे॥
सेंदूर ले- ले मारहिं धै- धै
राति मांति सुभ डोली रे।
भा सुभ मेंसु फुला टेसू,
जनहु फाग होइ होरी रे॥
कहै मुहम्मद जे दिन अनंदा,
सो दिन आगे आवे रे।

है आगे नग रेनि सबहि जग,
दिनहि सोहाग को पखे रे।

मसला या मसालानामा

यह जायसी एक काव्य रचना है। इसके आरंभ में जायसी ने अल्लाह से मन लगाने की बात कही है–

यह तन अल्लाह मियां सो लाई।
जिहि की षाई तिहि की गाई॥
बुधि विद्या के कटक मो हों मन का विस्तार।
जेहि घर सासु तरुणि हे, बहुअन कौन सिंगार॥

जायसी कहते हैं, अगर जीवन को निष्प्रेम भाव से जीवन- निर्वाह किया जाए, तो वह व्यर्थ है, जिस हृदय में प्रेम नहीं, वहाँ ईश्वर का वास नहीं हो सकता है। भला सुने गांव में कोई आता है--

बिना प्रेम जो जीवन निबाहा।
सुने गाऊँ में आवै काहा॥

पद्मावत

जायसी हिंदी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवियों में से एक हैं। उनकी रचना का महानकाव्य पद्मावत हिंदी भाषा के प्रबंध काव्यों में शब्द, अर्थ और अलंकृत तीनों दृष्टियों से अनूठा काव्य है। इस कृति में श्रेष्टतम प्रबंध काव्यों के सभी गुण प्राप्त हैं। धार्मिक स्थलों की बहुलता, उदात्त लौकिक और ऐतिहासिक कथा वस्तु- भाषा की अत्यंत विलक्षण शक्ति, जीवन के गंभीर सर्वांगीण अनुभव, सशक्त दार्शनिक चिंतन आदि इसकी अनेक विशेषताएँ हैं। सचमुच पद्मावत हिंदी साहित्य का एक जगमगाता हुआ हीरा है। अवधी भाषा के इस उत्तम काव्य में मानव- जीवन के चिरंतन सत्य प्रेम- तत्त्व की उत्कृष्ट कल्पना है। कवि के शब्दों में इस प्रेम कथा का मर्म है। 'गाढ़ी प्रीति नैन जल भेई।' रत्नसेन और पद्मावती दोनों के जीवन का अंतर्यामी सूत्र है। प्रेम- तत्त्व की दृष्टि से पद्मावत का जितना भी अध्ययन किया जाए, कम है। संसार के उत्कृष्ट महाकाव्यों में इसकी गिनती होने योग्य है। पद्मावत में सूफी और भारतीय सिद्धांतों के समन्वय का सहारा लेकर प्रेम पीर की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति की गई है।

मलिक मुहम्मद जायसी निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परंपरा से संबंधित थे। जायसी सभी धर्मो के प्रति बड़े उदार थे। उन्हें अहंकार छू भी नहीं गया था। वे बहुविज्ञ होते हुये भी अपने ज्ञान को पंडितों द्वारा दिया गया प्रसाद मानते थे। जायसी पहुंचे हुये सिद्धपुरुष और चमत्कारी फकीर थे। अनेक व्यक्ति उनके शिष्य थे। उनमें से कई जायसी के अमरग्रंथ 'पद्मावत' के अंश गाकर भिक्षा मांगा करते थे। एक दिन ऐसा ही एक चेला अमेठी में नागमती का बारहमासा गाता हुआ फिर रहा था। अमेठी नरेश उसको सुनकर मुग्ध हो गये। उन्होंने पूछा –"शाहजी, ये किसके दोहे हैं?" शिष्य ने अपने गुरु जायसी का नाम बताया। राजा जायसी के पास गये और उन्हें आदरपूर्वक अमेठी ले आए। जायसी मृत्युपर्यंत वही रहे।

उनकी मृत्यु के संबंध में एक घटना उल्लेखनीय है। अमेठी नरेश जब जायसी की सेवा में उपस्थित होते थे तो एक बहेलिया भी उनके साथ जाता था। जायसी उसका विशेष सत्कार करते थे। जब लोगों ने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि यह मेरा कातिल है। इस पर सब आश्चर्यचकित हो गये। बहेलिये ने कहा कि इस पाप-कर्म को करने से पूर्व ही मुझे कत्ल कर दिया जाए। राजा ने भी इसे उचित समझा, किंतु जायसी ने बहेलिये को बचा लिया। राजा ने सुरक्षा की दृष्टि से घोषणा की कि बहेलिये को कोई बंदूक तलवार आदि न दी जाए। परंतु विधि का विधान टाले नहीं टलता। एक अंधेरी रात में, जब बहेलिया राजभवन से अपने गांव जाने लगा तो दारोगा से बोला, 'मेरी राह जंगल से होकर जाती है, इसलिए कृपा करके रात भर के लिए मुझे एक बंदूक दे दो। प्रातःकाल लौटा दूंगा।' दारोगा ने इसमें कोई आपत्ति नहीं की और एक बंदूक बहेलिये को दे दी। बहेलिया जंगल में होकर जा रहा था कि शेर का शब्द सुनाई दिया। उसने शब्द की दिशा में गोली छोड़ दी। शब्द बंद हो गया। शायद शेर मर गया है, यह सोचकर वह बिना रुके आगे बढ़ गया। उसी समय राजा ने स्वप्न देखा कि कोई उसे कह रहा है–"आप सो रहे हैं और आपके बहेलिये ने मलिक साहब को मार डाला।" राजा चौंककर उठे और नंगे पांव जायसी की कुटिया पर पहुंचे। जायसी का शरीर धरती पर निर्जीव पड़ा था। उनके माथे पर गोली का निशान था। इस दुर्घटना से राजमहल और नगर में शोक छा गया। जायसी की लाश गढ़ से नजदीक दफना दी गयी। इस प्रकार सन् 1542 ई. में इस सूफी संत की जीवन ज्योति परम ज्योति में समा गयी।

'पद्मावत' जैसे महाकाव्य के प्रणेता के रूप में जायसी सदा अमर रहेंगे। उनका भावुक, सुकोमल और प्रेम की पीर से भरा हृदय प्रेम-पंथ के पथिकों को सदा रास्ता दिखाता रहेगा। हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के महान समन्वयकारी उच्च कोटि के कवि और आदर्श मानव के रूप में जायसी भारतीय साहित्य और समाज में चिरस्मरणीय रहेंगे।

2

जायसी का रहस्यवाद

रहस्यवाद वह भावनात्मक अभिव्यक्ति है, जिसमें कोई व्यक्ति या रचनाकार उस अलौकिक, परम, अव्यक्त सत्ता से अपना प्रेम प्रकट करता है, जो सम्पूर्ण सृष्टि का आधार है। वह उस अलौकिक तत्त्व में डूब जाना चाहता है। ऐसा करके जब उसे चरम आनंद की अनुभूति होती है, तब वह इस अनुभूति को बाह्य जगत में व्यक्त करने का प्रयास करता है, किन्तु इसमें अत्यंत कठिनाई होती है। लौकिक भाषा और वस्तुएं उस आनंद को व्यक्त नहीं कर सकती। इसलिए उसे उस पारलौकिक आनंद को व्यक्त करने के लिए प्रतीकों का सहारा लेना पड़ता है, जो आम जनता के लिए रहस्य बन जाते हैं।

हिंदी साहित्य में रहस्यवाद सर्वप्रथम मध्य काल में दिखाई पड़ता है। संत या निर्गुण काव्यधारा में कबीर के यहाँ, तथा प्रेममार्गी या सूफी काव्यधारा में जायसी के यहाँ रहस्यवाद का प्रयोग हुआ है। दोनों परम सत्ता से जुड़ना चाहते हैं और उसमें लीन होना चाहते हैं–कबीर योग के माध्यम से तथा जायसी प्रेम के माध्यम से। इसलिए कबीर का रहस्यवाद अंतर्मुखी व साधनात्मक रहस्यवाद है तथा जायसी का बहिर्मुखी व भावनात्मक रहस्यवाद है।

रहस्यवादी भक्त परमात्मा को अपने परम साध्य एवं प्रियतम के रूप में देखता है। वह उस परम सत्ता के साक्षात्कार और मिलन के लिए वैकल्प का अनुभव करता है, जैसे मेघ और सागर के जल में मूलतः कोई भेद नहीं है, फिर भी मेघ का पानी नदी रूप में सागर से मिलने को व्याकुल रहता है। ठीक उसी

प्रकार की अभेद जन्म व्याकुलता एवं मिलन जन्य विह्वलता भक्त की भी होती है। जायसी की रहस्योन्मुखता भी इसी शैली की है। जायसी रहस्यमयी सत्ता का आभास देने के लिए बहुत ही रमणीय तथा मर्मस्थली दृश्य संकेत उपस्थित करने में समर्थ हुए हैं।

पद्मावती के पारस रूप का प्रभाव

द्विवेदी युग के अनंतर हिंदी कविता में एक ओर छायावाद का विकास हुआ वहीं दूसरी ओर रहस्यवाद और हालावाद का प्रादुर्भाव हुआ। वस्तुतः रहस्यवाद, बल्कि कहना चाहिए आधुनिक रहस्यवाद छायावादी काव्य-चेतना का ही विकास है। प्रकृति के माध्यम से मात्र सौंदर्य-बोध तक सीमित रहने वाली और साथ ही प्रकृति के माध्यम से प्रत्यक्ष जीवन का चित्रण करने वाली धारा छायावाद कहलाई, पर जहां प्रकृति के प्रति औत्सुक्य एवं रहस्यमयता का भाव भी जाग्रत हो गया, वहां यह रहस्यवाद में परिवर्तित हो गई। जहां वैयक्तिकता का भाव प्रबल हो गया, वहां यह धारा हालावाद के रूप में सर्वथा अलग हो गई।

छायावाद और रहस्यवाद का मुख्य अंतर यह है कि छायावाद में प्रकृति पर मानव जीवन का आरोप है और यह प्रकृति प्रेम तक ही सीमित रहता है,किंतु रहस्यवाद में प्रकृति के माध्यम से उस अज्ञात-अनंत शक्ति के साथ संबंध स्थापित करने का प्रयत्न होता है,जो सहज ही प्राप्य नहीं है। इस तथ्य को दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि 'छायावाद में प्रकृति अथवा परमात्मा के प्रति कुतूहल रहता है, पर जब यह कुतूहल आसक्ति का रूप धारण कर लेता है,तब वहां से रहस्यवाद की सीमा प्रारंभ हो जाती है।'

आत्मा-परमात्मा के संबंध में चर्चा दर्शनशास्त्र का विषय है। किंतु दर्शन में विचारों की,चिंतन की प्रधानता रहती है। रहस्यवाद भावना की वस्तु है-काव्य का विषय है।इसी सत्य की ओर संकेत करते हुए **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने कहा था कि **'साधना के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, वही साहित्य-क्षेत्र में रहस्यवाद है।'**

रहस्यवादी कवि शरीर की सुध-बुध भूलकर अंतर्जगत में रम जाता है, आत्मारूप में। 'आत्मा' शब्द का प्रयोग युगों से स्त्रीलिंग में हो रहा है। अतः रहस्यवादी कवि की 'आत्मा' स्त्रीलिंग में बोलती है। परमात्मा पुलिंग है। धीरे-धीरे परमात्मा और आत्मा नर-नारी के रूप बन जाते हैं और यही दशा विकसित होती हुई आत्मा और परमात्मा में दाम्पत्य भाव की स्थापना कर देती

है। यही कारण है कि रहस्यवादी भावनाएं अधिकतर दाम्पत्य प्रेम के रूप में अभिव्यक्त होती हैं।

रहस्य का अर्थ है –'ऐसा तत्त्व जिसे जानने का प्रयास करके भी अभी तक निश्चित रूप से कोई जान नहीं सका। ऐसा तत्त्व है परमात्मा। काव्य में उस परमात्म–तत्त्व को जानने की, जानकर पाने की और मिलने पर उसी में मिलकर खो जाने की प्रवृत्ति का नाम है–रहस्यवाद।'

रहस्यवाद का इतिहास

रहस्यवाद भारतीय काव्य के लिए कोई नई चीज नहीं है। वेदों और उपनिषदों में(ऋग्वेद का नारदीय सूक्त,केनोपनिषद्, श्वेताश्वेतरोपनिषद आदि), गीता के 11वें अध्याय में, शंकराचार्य के अद्वैतवाद में, सहजानंद के उपासक कण्हपा आदि सिद्धों की रचनाओं में रहस्यवादी भावनाएं नाना रूपों में व्यक्त हुई हैं, किंतु वेदों से सिद्धों तक यह अभिव्यक्ति बौद्धिक चिंतन अर्थात् मस्तिष्क से ही संबंधित रही हैं। अतः इसे रहस्यवाद नहीं,दर्शन कहना उचित है।

हिंदी में रहस्यवाद का स्वर सर्वप्रथम कबीर की वाणी में सुनाई देता है। कबीर एक पहुंचे हुए संत थे। उनकी अनुभूति में आत्मा–परमात्मा की एकता का सुंदर चित्रण हुआ। वे कहते हैं–

'जल में कुंभ,कुंभ में जल है,बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ, जल जलहिं समाना, यह तत कथ्यो गियानी॥'

उसी युग में जायसी ने भी रहस्यवादी भावना का अत्यंत मनोहारी चित्रण किया है। उनकी अनुभूति में प्रेम की पीर और विरह–वेदना का प्राधान्य है।

भक्तिकाल के अनंतर रहस्यवादी भावना हिंदी काव्य से लुप्तप्रायः रही। किंतु आधुनिक युग में छायावादी युग के प्रारंभ होने के साथ ही रहस्यवाद का स्वर भी मुखरित हो उठा। इस युग के सभी प्रमुख कवियों की कविता में रहस्यवाद की भावना व्यक्त हुई। लेकिन यह आधुनिक रहस्यवाद प्राचीन रहस्यवाद अथवा यथार्थ रहस्यवाद से भिन्न है। यथार्थ रहस्यवाद से तात्पर्य ऐसे साधकों से है जिन का जीवन ही रहस्य–साधना द्वारा परम तत्त्व की अनुभूति एवं उसके साथ तादात्म्य करने में ही लीन हो गया। उन्होंने वैयक्तिक साधक होते हुए भी समष्टिगत तत्त्वों को भी उसी में पाने की कोशिश की। हिंदी में कबीर,नानक,दादू,रैदास आदि इसी प्रकार के रहस्य साधक हैं। उनकी रहस्य साधना में वैयक्तिक मोक्ष की कामना के साथ–साथ सामाजिक मोक्ष की मंगल

कामना भी अंतर्निहित है। इसके विपरीत्त आधुनिक छायावादियों में जिस रहस्यमयता के दर्शन होते हैं,वहां कल्पना की ही प्रधानता है। निराला एवं महादेवी में हमें कुछ सीमा तक पहली जैसी भावना की अनुभूति अवश्य होती है,किंतु अन्य आधुनिक रहस्यवादियों का चेतनागत परिवर्तित रूप उन्हें रहस्य साधक रहने ही नहीं देता। फिर भी वहां तथाकथित काल्पनिक रहस्यवाद तो है ही।

आधुनिक रहस्यवाद पश्चिमी धारा से प्रभावित है। प्राचीन रहस्यवाद में बौद्धिक चेतना की प्रधानता है,किंतु आधुनिक रहस्यवाद में प्रेम-संबंध तथा प्रणय निवेदन को प्रमुख स्थान दिया गया है। प्राचीन रहस्यवाद में धार्मिक अनुभूति एवं साधना का प्राधान्य है,किंतु आधुनिक रहस्यवाद धार्मिक साधना का फल न होकर मुख्यत: कल्पना पर आधारित है।

हिंदी में आधुनिक रहस्यवाद पश्चिम की देन है। इस बात को **प्रसाद** ने स्पष्ट रूप से अस्वीकार किया है। वे इसे भारतीय परंपरा का विकसित रूप मानते हैं। 'वर्तमान हिंदी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौंदर्यमय व्यंजना होने लगी है। वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है।...वर्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी संपत्ति है,इसमें संदेह नहीं।' एक अन्य जगह पर उन्होंने लिखा है- 'आज साहित्य में विश्व- सुंदरी प्रकृति में चेतना का आरोप संस्कृत वाङ्गमय में प्रचुरता से प्राप्त होता है। यह प्रकृति या शक्ति का रहस्यवाद सौंदर्य-लहरी के 'शरीरत्वं शम्भो' का अनुकरण मात्र है। वर्तमान हिंदी का रहस्यवाद स्वाभाविक रूप से विकसित हो कर आया है।' **महादेवी वर्मा** ने भी रहस्यवाद के तत्त्वों का उल्लेख करते हुए उसे परम्परागत ही माना है। वे लिखती हैं- 'आज गीत में हम जिसे नए रहस्यवाद के रूप में ग्रहण कर रहे हैं, वह इन सबकी विशेषताओं से युक्त होने पर भी उन सबसे भिन्न है। उसने परा-विद्या की अपार्थिवता ली,वेदांत के अद्वैत की छाया ग्रहण की, लेकिन प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य-भाव सूत्र में बांधकर एक निराले स्नेह संबंध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को आलंबन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।'

यदि निष्पक्ष हो कर देखा जाए तो मानना पड़ेगा कि भले ही छायावाद युग के कवियों का रहस्यवाद परम्परा से विकसित हो, किंतु इस बात से इंकार भी नहीं किया जा सकता कि छायावादियों को रहस्यवाद की ओर प्रेरित करने का श्रेय **विलियम वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज,ब्लेक,शैली,कीट्स** जैसे पाश्चात्य रोमान्टिक

कवियों की कृतियों का ही है। जब छायावाद के कवियों ने इन पाश्चात्य कवियों की कृतियों में रहस्यवाद की अभिव्यक्ति देखी तो ये भी उसकी ओर प्रवृत्त हुए और अपनी रचनाओं में उसे स्वीकार किया। निश्चित ही आधुनिक छायावादियों का रहस्यवाद साधनात्मक नहीं बल्कि कल्पनात्मक है।

छायावाद की रहस्यवाद इसकी भी अनेक परिभाषाएँ दी गयी हैं। **आचार्य शुक्ल** के अनुसार – 'आत्मा और परमत्मा,जीव और ब्रह्म की प्रणयानुभूति ही रहस्यवाद है।'

उक्त परिभाषा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रहस्यवाद एक काव्यधारा है,जिसमें अलौकिक ब्रह्म और लौकिक साधक के प्रेम संबंधों की चर्चा की जाती है और जिसके विस्मयकारी रूप पर आश्चर्य व्यक्त किया जाता है। यह छायावाद से मिलती-जुलती काव्यधारा है। छायावाद में प्रकृति से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है और रहस्यवाद में प्रकृति के माध्यम से कवि परमात्मा से अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। हिंदी काव्य में छायावाद के साथ ही साथ रहस्यवाद की भी प्रतिष्ठा हुई और जो छायावादी कविता के उन्नायक हुए वे ही रहस्यवाद के भी उन्नायक हुए।

रहस्यवाद को कुछ लोग अंग्रेजी मिस्टीसिज्म Mysticism का हिंदी रूपांतरण कहते हैं। यह सत्य है या असत्य,यह नहीं कहा जा सकता पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मिस्टिक साहित्य Mysticism की भाँति रहस्यवाद में भी अस्पष्टता पायी जाती है।

रहस्यवाद की विशेषताएँ

रहस्यवादी काव्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

अलौकिक ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा

रहस्यवाद की पहली विशेषता यह है कि इस युग के कवियों ने सबसे पहले ब्रह्म को जानने की जिज्ञासा व्यक्त की है, जैसे –

हे अनंत रमणीय कौन तुम?
यह मैं कैसे कह सकता,
कैसे हो? क्या हो? इसका तो-
भार विचार न सह सकता।

अलौकिक ब्रह्म का अनुभव –

जिज्ञासा के बाद रहस्यवादी कवि इस अलौकिक ब्रह्म का अनुभव करने लगते हैं। उन्हें यह ब्रह्म प्रकृति के कण-कण में विद्यमान दिखाई देता है। इनकी दृष्टि में जड़ चेतन हर जगह वह अलौकिक सत्ता की भव्य छटा दिखाई देती है। कवि अपने और ब्रह्म में अविछिन्न सम्बन्ध मानने लगते हैं।

निराला जी ने कहा है -

तुम तुंग - हिमालय - शृंग
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छवास
और मैं कांत-कामिनी-कविता।

महादेवी वर्मा लिखती हैं–

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ!
नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण-कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में,
प्रलय में मेरा पता पदचिन्ह जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में,
कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ!

ब्रह्म को जगत के सभी कार्यों में देखना

इस धारा के कवियों ने अलौकिक सत्ता को जगत के सभी कार्यों में देखने का प्रयास किया है। नदी, वन, फूल, पत्ते सभी उसी के संकेतों पर कार्यरत हैं।

अनुभव के बाद मिलन की तड़पन

ब्रह्म का अनुभव प्राप्त हो जाने के बाद रहस्यवादी कवि उस ब्रह्म से मिलने के लिए व्याकुल हो उठते हैं। वे दु:ख के आंसू रोने लगते हैं। जैसे -

आह! वेदना मिली विदाई
मैंने भ्रमवश जीवन संचित,
मधुकरियों की भीख लुटाई

संगीतमय काव्य

रहस्यवाद और छायावाद के कवियों का काव्य संगीतमय है। प्रत्येक कवि की कविता गेय है। संगीत के कारण यह काव्य भी प्रभावक बन गया

है। महादेवी वर्मा के गीत यह सिद्ध करते हैं कि रहस्यवादी कविता संगीत तत्त्व युक्त है। जैसे–

प्रिय चिरंतन है सजनि,
क्षण-क्षण नवीन सुहासिनी मैं!
श्वास में मुझको छिपाकर वह असीम विशाल चिर घन
शून्य में जब छा गया उसकी सजीली साध-सा बन,
छिप कहाँ उसमें सकी
बुझ-बुझ जली चल दामिनी मैं।

संकेतिकता

रहस्यवादी काव्य संकेतिक है। इस धारा के कवियों ने लौकिक रूप से जो बात कही है उसका अर्थ अलौकिक रूप से लगाया जाता है।

आत्मा परमात्मा में एकता

इस धारा का प्रत्येक साधक अपने और ब्रह्म में एकता स्थापित करता है। जैसे - हिमालय और उससे निकलने वाली सरिता में एकता की स्थिति होती है, उसी प्रकार कवि और परमात्मा में अविभिन्न सम्बन्ध है। निराला जी ने इसे इस प्रकार व्यक्त किया है -

तुम विमल हृदय उच्छवास
और मैं कांत-कामिनी-कविता।
तुम प्रेम और मैं शान्ति,
तुम सुरा - पान - घन अन्धकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति।

सुख और दु:ख दोनों की अभिव्यक्ति

रहस्यवाद के कवियों ने ब्रह्म की मिलन अनुभूति में सुख का अनुभव किया है तो उससे दूर रहने में विरह का। महादेवी जी ने तो विरह की स्थिति को ही श्रेष्ठ माना है क्योंकि इस स्थिति में साधना की तीव्रता बनी रहती है। पंथ रहने दो अकेला कहकर उन्होंने ऐसा ही भाव व्यक्ति किया है।

प्रेम की अजस्र धारा

रहस्यवादी कवियों का पथ प्रेमपथ है। उन्होंने प्रेम के आधार पर ही आत्मा और परमात्मा के मिलन एवं विरह की स्थितियों का वर्णन किया है। उन्होंने परमात्मा को प्रिय शब्द के संबोधित भी किया है।

प्रकृति में अलौकिकता के दर्शन

इस धारा के कवियों ने प्रकृति के माध्यम से अलौकिक ब्रह्म का चित्रण किया है। उन्होंने प्रकृति के कण-कण में उस अलौकिक सत्ता के दर्शन किये हैं। जैसे -

शशि के दर्पण में देख देख,
सुलझाये मैंने तिमिर केश,
गूंथे चुन तारक पारिजात,
अवगुंठन कर किरणें अशेष
क्यों आज रिझा पाया ठसको,
मेरा अभिनव श्रृंगार नहीं

रहस्यवाद के प्रमुख कवि

रहस्यवाद के प्रमुख कवि,प्रसाद,महादेवी,पन्त,निराला और डॉ.रामकुमार वर्मा जी हैं। निराला जी के रहस्यवाद में तत्त्व ज्ञान अधिक है तो पन्त के रहस्यवाद में प्राकृतिक सौन्दर्य की अधिकता। प्रेम और वेदना ने महादेवी वर्मा को रहस्यों मुख किया है तो प्रसाद जी ने उस परमसत्ता को अपने बाहर खोजा।

जेहि दिन दसन जोति निरमई।
बहुते जोति जोति ओहि भई॥
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती।
रतन पदारथ मानिक मोती॥
जहूँ जहूँ विहँसिं सुभावहि हंसिं।
तहँ तहँ छिटकि जोति और को दूजी॥
दामिनि दमकि न सरवरि पूजी।
पुनि ओरि जोति परगसी॥
नयन जो देखा कंवल भा निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हँस भाए दसन जोति नगर हीर॥

जायसी ने प्रकृति मूलतः रहस्य वाद को अपनाया है। जायसी को प्रकृति की शक्तियों में किसी अनंद सत्ता का भान होता है। उसे ऐसा लगता है कि प्रकृति के समस्त तत्त्व उसी अनंत सत्ता के अनुकूल हैं। प्रकृति के समस्त तत्त्व उसी अनंत सत्ता द्वारा चलित, अनुशासित और आकर्षित हैं। उस नदी, चाँद, सूर्य, तारे, वन, समुद्र, पर्वत इत्यादि की भी सर्जना की है ...

सरग साजि के धरती साजी।
बरन. बरन सृष्टि उपराजी।।
सागे चाँदए सूरज और तारा।
साजै वन कहू समुद पहारा।।

इस समस्त सृष्टि का परिचालन उसी में इंगित पर हो रहा है ...

साजह सब जग साज चलावा।
औ अस पाछैं ताजन लावा।।
तिन्ह ताजन डर जाइन बोला।
सरग फिरई ओठ धरती डोला।।
चाँद सूरुज कहाँ गगन गरासा।
और मेघन कहँ बीजू तरासा।।
नाथे डारे कारु जस नाचा।
खेल खेलाई केरि जहि खाँचा।।

जायसी ने प्रायः प्रकृति के माध्यम से परेश सत्ता की ओर संकेत दिया है .. सिंहलद्वीप की अमराई की अनिवर्चनीय सुखदायी छाया का वर्णन करते हुए कवि ने उस छाया का अध्यात्मिक संकेत भी दिया है ...

धन अमराउ लाग चहुँ पासा।
उठा भूमि हुत लागि अकासा।।
तखिर रुबै मलय गिरि लाई।
भइ जग छाह रेनि होइ आई।।
मलय समीर सोहावन छाया।
जेठ जाड़ लागे तेहि माहां।।
ओहि छाँह रेन होइ आबै।
हरिहा सबै अकास देखावे।।
पथिक जो पहुँचे सहिकै धामू।
दुख बिसरै सुख होइ बिसराम।।

जेहि वह पाइ छाँह अनुपा।
फिरि नहिं आइ सहं यह धूप॥

जायसी कहते हैं .... संपूर्ण सृष्टि उस प्रियतम के अमर धाम तक पहुँचने के लिए प्रगतिमान है, किंतु वहाँ पहुँचने के लिए साधना की पूर्णता अत्यंत आवश्यकता है, अपूर्णता की स्थिति में वहाँ पहुँच पाना अत्यंत कठिन है ....

धाइ जो बाजा के सा साधा।
मारा चक्र भएउ दुइ आधा॥
चाँद सुरुज और नखत तराई।
तेहिं डर अंतरिख फिरहिं सबाई॥
पवन जाइ तहँ पहुँचे चाहा।
मारा तेस लोहि भुहं रहा॥
अगिनि उठी उठि जरी नयाना।
धुवाँ उठा उठि बीच बिलाना॥
परनि उठा उठि जाइ न छूवा।
बहुरा रोई आइ भुइं छुआ॥

रहस्यवाद के अंतर्गत प्रेम के स्तर

प्रथम स्तर है अलौकिक सत्ता के प्रति आकर्षण,
द्वितीय स्तर है उस अलौकिक सत्ता के प्रति दृढ़ अनुराग,
तृतीय स्तर है विरहानुभूति,
चौथा स्तर है मिलन का मधुर आनंद।

आधुनिक काल में भी छायावाद में रहस्यवाद दिखाई पड़ता है। महादेवी वर्मा के काव्य में रहस्यवाद की पर्याप्तता है, लेकिन आधुनिक काल में रहस्यवाद उस अमूर्त, अलौकिक या परम सत्ता से जुड़ने की चाहत के कारण नहीं उत्पन्न हुआ अपितु यह लौकिक प्रेम में आ रही बाधाओं की वजह से उत्पन्न हुआ है। महादेवी और निराला में आध्यात्मिक प्रेम का मार्मिक अंकन मिलता है। यद्यपि छायावाद और रहस्यवाद में विषय की दृष्टि से अंतर है–जहाँ रहस्यवाद का विषय आलंबन अमूर्त, निराकार ब्रह्म है, जो सर्व व्यापक है, वहाँ छायावाद का विषय लौकिक ही होता है।

सूफियों के अद्वैतवाद का जो विचार पूर्वप्रकरण में हुआ था उससे यह स्पष्ट हो गया कि किस प्रकार आर्य जाति (भारतीय और यूनानी) के

तत्त्वचिंतकों द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धांत को सामी पैगंबरी मतों में रहस्यभावना के भीतर स्थान मिला। उक्त मतों (यहूदी, ईसाई, इसलाम) के बीच तत्त्वचिंतन की पद्धति या ज्ञानकांड का स्थान न होने के कारण – मनुष्य की स्वाभाविक बुद्धि या अक्ल का दखल न होने के कारण – अद्वैतवाद का ग्रहण रहस्यवाद के रूप में ही हो सकता था। इस रूप में पड़कर वह धार्मिक विश्वास में बाधक नहीं समझा गया। भारतवर्ष में तो यह ज्ञानक्षेत्र से निकला और अधिकतर ज्ञानक्षेत्र में ही रहा, पर अरब, फारस आदि में जा कर यह भावक्षेत्र के बीच मनोहर रहस्यभावना के रूप में फैला।

यूरोप में भी प्राचीन यूनानी दार्शनिकों द्वारा प्रतिष्ठित अद्वैतवाद ईसाई मजहब के भीतर रहस्यभावना के ही रूप में लिया गया। रहस्योन्मुख सूफियों और पुराने कैथलिक ईसाई भक्तों की साधना समान रूप से माधुर्य भाव की ओर प्रवृत्त रही। जिस प्रकार सूफी ईश्वर की भावना प्रियतम के रूप में करते थे उसी प्रकार स्पेन, इटली आदि यूरोपीय प्रदेशों के भक्त भी। जिस प्रकार सूफी 'हाल' की दशा में उस माशूक से भीतर-ही-भीतर मिला करते थे उसी प्रकार पुराने ईसाई भक्त साधक भी दुलहनें बन कर उस दूल्हे से मिलने के लिए अपने अंतर्देश में कई खंडों के रंगमहल तैयार किया करते थे। ईश्वर की पति रूप में उपासना करनेवाली सैफो, सेंट टेरेसा आदि कई भक्तिनें भी यूरोप में हुई हैं।

अद्वैतवाद के दो पक्ष हैं – आत्मा और परमात्मा की एकता तथा ब्रह्म और जगत की एकता। दोनों मिल कर सर्ववाद की प्रतिष्ठा करते हैं – सर्वं खल्विदं ब्रह्म। यद्यपि साधना के क्षेत्र में सूफियों और पुराने ईसाई भक्तों, दोनों की दृष्टि प्रथम पक्ष पर ही दिखाई देती है। पर भावक्षेत्र में जा कर सूफी प्रकृति की नाना विभूतियों से भी उसकी छवि का अनुभव करते आए हैं।

ईसाइयत की 19वीं शताब्दी में रहस्यात्मक कविता का जो पुनरुत्थान योरप के कई प्रदेशों में हुआ उसमें सर्ववाद (पैनथेइज्म) का – ब्रह्म और जगत की एकता का भी बहुत कुछ आभास रहा। वहाँ इसकी ओर प्रवृत्ति स्वातंत्र्य और लोकसत्तात्मक भावों के प्रचार के साथ-ही-साथ दिखाई पड़ने लगी। स्वातंत्र्य के बड़े भारी उपासक अँगरेज, कवि शेली में इस प्रकार के सर्ववाद की झलक पाई जाती है। आयर्लैंड में स्वतंत्रता की भीषण पुकार के बीच ईट्स की रहस्यमयी कविवाणी भी सुनाई देती रही है। ठीक समय पर पहुँचकर हमारे यहाँ के कवींद्र – रवींद्र भी वहाँ के सुर में सुर मिला आए थे। पश्चिम के समालोचकों की समझ में वहाँ के इस काव्यगत सर्ववाद का संबंध लोकसत्तात्मक भावों के साथ

है। इन भावों के प्रचार के साथ ही स्थूल गोचर पदार्थों के स्थान पर सूक्ष्म अगोचर भावना (ऐब्स्ट्रैक्शंस) की प्रवृत्ति हुई और वही काव्यक्षेत्र में जा कर भड़कीली और अस्फुट भावनाओं तथा चित्रों के विधान के रूप में प्रकट हुई।

अद्वैतवाद मूल में एक दार्शनिक सिद्धांत है, कविकल्पना या भावना नहीं है। वह मनुष्य के बुद्धिप्रयास या तत्त्वचिंतन का फल है। वह ज्ञानक्षेत्र की वस्तु है। जब उसका आधार ले कर कल्पना या भावना उठ खड़ी होती है अर्थात् जब उसका संचार भावक्षेत्र में होता है तब उच्च कोटि के भावात्मक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है। रहस्यवाद दो प्रकार का होता है – भावात्मक और साधनात्मक। हमारे यहाँ का योगमार्ग साधनात्मक रहस्यवाद है। यह अनेक अप्राकृतिक और जटिल अभ्यासों द्वारा मन को अव्यक्त तथ्यों का साक्षात्कार कराने तथा साधक को अनेक अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त कराने की आशा देता है। तंत्र और रसायन भी साधनात्मक रहस्यवाद हैं, पर निम्न कोटि के। भावात्मक रहस्यवाद की भी कई श्रेणियाँ हैं जैसे, भूत प्रेत की सत्ता मान कर चलनेवाली भावना, परम सत्ता के रूप में एक ईश्वर की सत्ता मान कर चलनेवाली भावना स्थूल रहस्यवाद के अंतर्गत होगी। अद्वैतवाद या ब्रह्मवाद को ले कर चलनेवाली भावना से सूक्ष्म और उच्च कोटि के रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है। तात्पर्य यह कि रहस्यभावना किसी विश्वास के आधार पर चलती है, विश्वास करने के लिए कोई नया तथ्य या सिद्धांत नहीं उपस्थित कर सकती। किसी नवीन ज्ञान का उदय उसके द्वारा नहीं हो सकता। जिस कोटि का ज्ञान या विश्वास होगा उसी कोटि की उससे उद्‌भूत रहस्यभावना होगी।

अद्वैतवाद का प्रतिपादन सबसे पहले उपनिषदों में मिलता है। उपनिषद् भारतीय ज्ञानकांड के मूल हैं। प्राचीन ऋषि तत्त्वचिंतन द्वारा ही अद्वैतवाद के सिद्धांत पर पहुँचे थे। उनमें इस ज्ञान का उदय बुद्धि की स्वाभाविक क्रिया द्वारा हुआ था, प्रेमोन्माद या बेहोशी की दशा में सहसा एक दिव्य आभास या इलहाम के रूप में नहीं। विविध धर्मों का इतिहास लिखनेवाले कुछ पाश्चात्य लेखकों ने उपनिषदों के ज्ञान को जो रहस्यवाद की कोटि में रखा है, वह उनका भ्रम या दृष्टिसंकोच हैं। बात यह है कि उस प्राचीन काल में दार्शनिक विवेचन को व्यक्त करने की व्यवस्थित शैली नहीं निकली थी। जगत और उसके मूल कारण का चिंतन करते-करते जिस तथ्य तक वे पहुँचते थे, उसकी व्यंजना अनेक प्रकार से वे करते थे। जैसे आजकल किसी गंभीर विचारात्मक लेख के भीतर कोई मार्मिक स्थल आ जाने पर लेखक की मनोवृत्ति भावोन्मुख हो जाती है और

वह काव्य की भावात्मक शैली का आलंबन करता है, उसी प्रकार उन प्राचीन ऋषियों को भी विचार करते-करते गंभीर मार्मिक तथ्य पर पहुँचने पर कभी-कभी भावोन्मेष हो जाता था और वे अपनी उक्ति का प्रकाश रहस्यात्मक और अनूठे ढंग से कर देते थे।

गीता के दसवें अध्याय में सर्ववाद का भावात्मक प्रणाली पर निरूपण है। वहाँ भगवान ने अपनी विभूतियों का जो वर्णन किया है, वह अत्यंत रहस्यपूर्ण है। सर्ववाद को ले कर जब भक्त की मनोवृत्ति रहस्योन्मुख होगी तब वह अपने को जगत के नाना रूपों के सहारे उस परोक्ष सत्ता की ओर ले जाता हुआ जान पड़ेगा। वह खिले हुए फूलों में, शिशु के स्मित आनन में, सुंदर मेघमाला में, निखरे हुए चंद्रबिंब में उसके सौंदर्य का, गंभीर मेघगर्जन में, बिजली की कड़क में, वज्रपात में, भूकंप आदि प्राकृतिक विप्लवों में उसकी रौद्र मूर्ति का, संसार के असामान्य वीरों, परोपकारियों और त्यागियों में उसकी शक्ति, शील आदि का साक्षात्कार करता है। इस प्रकार अवतारवाद का मूल भी रहस्यभावना ही ठहरती है।

अवतारवाद के सिद्धांत रूप में गृहित हो जाने पर राम और कृष्ण के व्यक्त ईश्वर विष्णु के अवतार स्थिर हो जाने पर रहस्यदशा की एक प्रकार से समाप्ति हो गई। फिर राम और कृष्ण का ईश्वर के रूप में ग्रहण व्यक्तिगत रहस्यभावना के रूप में नहीं रह गया। वह समस्त जनसमाज के धार्मिक विश्वास का एक अंग हो गया, इस व्यक्त जगत के बीच प्रकाशित राम कृष्ण की नरलीला भक्तों के भावोद्रेक का विषय हुई। अतः रामकृष्णोपासकों की भक्ति रहस्यवाद की कोटि में नहीं आ सकती।

यद्यपि समष्टि रूप में वैष्णवों की सगुणोपासना रहस्यवाद के अंतर्गत नहीं कही जा सकती, पर श्रीमद्भागवत के उपरांत कृष्णभक्ति को जो रूप प्राप्त हुआ उसमें रहस्यभावना की गुंजाइश हुई। भक्तों की दृष्टि से जब धीरे-धीरे श्रीकृष्ण का लोकसंग्रही रूप हटने लगा और वे प्रेममूर्तिमात्र रह गए, तब उनकी भावना ऐकांतिक हो चली। भक्त लोग भगवान को अधिकतर अपने संबंध से देखने लगे, जगत के संबंध से नहीं। गोपियों का प्रेम जिस प्रकार एकांत और रूपमाधुर्यमात्र पर आश्रित था, उसी प्रकार भक्तों का भी हो चला। यहाँ तक कि कुछ स्त्री भक्तों में भगवान के प्रति उसी रूप का प्रेमभाव स्थान पाने लगा जिस रूप का गोपियों का कहा गया था। उन्होंने भगवान की भावना प्रियतम के रूप में की। बड़े-बड़े मंदिरों में देवदासियों की जो प्रथा थी उससे

इस माधुर्यभाव को और भी सहारा मिला। माता-पिता कुमारी लड़कियों को मंदिर में दान कर आते थे, जहाँ उनका विवाह देवता के साथ हो जाता था। अत: उनके लिए उस देवता की भक्ति पतिरूप में ही विधेय थी। इन देवदासियों में से कुछ उच्च कोटि की भक्तिनें भी निकल आती थीं। दक्षिण में अंदाल इसी प्रकार की भक्तिन थी जिसका जन्म विक्रम संवत् 773 के आस पास हुआ था। वह बहुत छोटी अवस्था में किसी साधु को एक पेड़ के नीचे मिली थी। वह साधु भगवान का स्वप्न पा कर, इसे विवाह के वस्त्र पहना कर श्रीरंग जी के मंदिर में छोड़ आया था।

अंदाल के पद द्रविड़ भाषा में 'तिरुप्पावइ' नामक पुस्तक में अब तक मिलते हैं। अंदाल एक स्थान पर कहती है - 'अब मैं पूर्ण यौवन को प्राप्त हूँ और स्वामी कृष्ण के अतिरिक्त और किसी को अपना पति नहीं बना सकती।' पति या प्रियतम के रूप में भगवान की भावना को वैष्णव भक्तिमार्ग में 'माधुर्य भाव' कहते हैं। इस भाव की उपासना में रहस्य का समावेश अनिवार्य और स्वाभाविक है। भारतीय भक्ति का सामान्य स्वरूप रहस्यात्मक न होने के कारण इस 'माधुर्य भाव' का अधिक प्रचार नहीं हुआ। आगे चल कर मुसलमानी जमाने में सूफियों की देखादेखी इस भाव की ओर कृष्णभक्ति शाखा के कुछ भक्त प्रवृत्त हुए। इनमें मुख्य मीराबाई हुई जो 'लोकलाज खो कर' अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रेम में मतवाली रहा करती थीं। उन्होंने एक बार कहा था कि 'कृष्ण को छोड़ और पुरुष है कौन? सारे जीव स्त्रीरूप हैं।'

सूफियों का असर कुछ और कृष्णभक्तों पर भी पूरा-पूरा पाया जाता है। चैतन्य महाप्रभु में सूफियों की प्रवृत्तियाँ साफ झलकती हैं। जैसे सूफी कव्वाल गाते-गाते हाल की दशा में हो जाते हैं वैसे ही महाप्रभु जी की मंडली भी नाचते-नाचते मूर्च्छित हो जाती थी। यह मूर्च्छाल रहस्यवादी सूफियों की रूढ़ि है। इसी प्रकार मद, प्याला, उन्माद तथा प्रियतम ईश्वर के विरह की दुरारूढ़ व्यंजना भी सूफियों की बँधी हुई परंपरा है। इस परंपरा का अनुसरण भी कुछ पिछले कृष्णभक्तों ने किया। नागरीदास जी इश्क का प्याला पी कर बराबर झूमा करते थे। कृष्ण की मधुर मूर्ति ने कुछ आजाद सूफी फकीरों को भी आकर्षित किया। नजीर अकबरावादी ने खड़ी बोली के अपने बहुत से पद्यों में श्री कृष्ण का स्मरण प्रेमालंबन के रूप में किया है।

निर्गुण शाखा के कबीर, दादू आदि संतों की परंपरा में ज्ञान का जो थोड़ा बहुत अवयव है वह भारतीय वेदांत का है - पर प्रेमतत्त्व बिलकुल सूफियों का

है। इनमें से दादू, दरियासाहब आदि तो खालिस सूफी ही जान पड़ते हैं। कबीर में 'माधुर्य भाव' जगह-जगह पाया जाता है। वे कहते हैं -

हरि मोर पिय मैं राम की बहुरिया।

'राम की बहुरिया' कभी तो प्रिय से मिलने की उत्कंठा और मार्ग की कठिनता प्रकट करती है जैसे -

मिलना कठिन है, कैसे मिलौंगी पिय जाय?
समुझि सोचि पग धारौं जतन से, बार बार डगि जाय।
ऊँची गैल, राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय।

और कभी विरहदु:ख निवेदन करती है।

पहले कहा जा चुका है कि भारतवर्ष में साधनात्मक रहस्यवाद ही हठयोग, तंत्र और रसायन के रूप में प्रचलित था। जिस समय सूफी यहाँ आए उस समय उन्हें रहस्य की प्रवृत्ति हठयोगियों, रसायनियों और तांत्रिकों में ही दिखाई पड़ी। हठयोग की तो अधिकांश बातों का समावेश उन्होंने अपनी साधनापद्धति में कर लिया। पीछे कबीर ने भारतीय ब्रह्मवाद और सूफियों की प्रेमभावना को मिला कर जो 'निर्गुण संत मत' खड़ा किया, उसमें भी 'इला, पिंगला, सुषम्ना नाड़ी' तथा भीतरी चक्रों की पूरी चर्चा रही। हठयोगियों वा नाथपंथियों को दो मुख्य बातें सूफियों और निर्गुण मत वाले संतों को अपने अनुकूल दिखाई पड़ी। (1) रहस्य की प्रवृत्ति, (2) ईश्वर को केवल मन के भीतर समझना और ढूँढ़ना।

कहने की आवश्यकता नहीं कि ये दोनों बातें भारतीय भक्तिमार्ग से पूरा मेल खानेवाली नहीं थीं। अवतारवाद के सिद्धांत रूप से प्रतिष्ठित हो जाने के कारण भारतीय परंपरा का भक्त अपने उपास्य को बाहर लोक के बीच प्रतिष्ठित कर के देखता है, अपने हृदय के एकांत कोने में ही नहीं। पर फारस में भावात्मक अद्वैती रहस्यवाद खूब फैला। वहाँ की शायरी पर इसका रंग बहुत गहरा चढ़ा। खलीफा लोगों के कठोर धर्मशासन के बीच भी सूफियों की प्रेममयी वाणी ने जनता को भावमग्न कर दिया।

इस्लाम के प्रारंभिक काल में ही भारत का सिंध प्रदेश ऐसे सूफियों का अड्डा रहा जो यहाँ वेदांतियों और साधकों के सत्संग से अपने मार्ग की पुष्टि करते रहे। अत: मुसलमानों का साम्राज्य स्थापित हो जाने पर हिंदुओं और मुसलमानों के समागम से दोनों के लिए जो एक 'सामान्य भक्तिमार्ग' आविर्भूत हुआ वह अद्वैती रहस्यवाद को ले कर, जिसमें वेदांत और सूफी मत दोनों का मेल था। पहले पहल नामदेव ने, फिर रामानंद के शिष्य कबीर ने जनता के बीच

इस 'सामान्य भक्तिमार्ग' की अटपटी वाणी सुनाई। नानक, दादू आदि कई साधक इस नए मार्ग के अनुयायी हुए, और 'निर्गुण संत मत' चल पड़ा। पर इधर यह निर्गुण भक्तिमार्ग निकला उधर भारत के प्राचीन 'सगुण मार्ग' ने भी, जो पहले से चला आ रहा था, जोर पकड़ा और राम कृष्ण की भक्ति का स्रोत बड़े वेग से हिंदू जनता के बीच बहा। दोनों की प्रवृत्ति में बड़ा अंतर यह दिखाई पड़ा कि एक तो लोकपक्ष से उदासीन हो कर केवल व्यक्तिगत साधना का उपदेश देता रहा पर दूसरा अपने प्राचीन स्वरूप के अनुसार लोकपक्ष को लिए रहा। 'निर्गुन बानी' वाले संतों के लोकविरोधी स्वरूप की गोस्वामी तुलसीदास जी ने अच्छी तरह पहचाना था।

जैसा कि अभी कहा जा चुका है, रहस्यवाद का स्फुरण सूफियों में पूरा-पूरा हुआ। कबीरदास में जो रहस्यवाद पाया जाता है वह अधिकतर सूफियों के प्रभाव के कारण। पर कबीरदास पर इस्लाम में कट्टर एकेश्वरवाद और वेदांत के मायावाद का रूखा संस्कार भी पूरा-पूरा था। उनमें वाक्चातुर्य था, प्रतिभा थी, पर प्रकृति के प्रसार में भगवान की कला का दर्शन करनेवाली भावुकता न थी। इससे रहस्यमयी परोक्ष सत्ता की ओर संकेत करने के लिए जिन दृश्यों को वे सामने करते हैं वे अधिकतर वेदांत और हठयोग की बातों के खड़े किए हुए रूपक मात्र होते हैं। अत: कबीर में जो कुछ रहस्यवाद है वह सर्वत्र एक भावुक या कवि का रहस्यवाद नहीं है। हिंदी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुंदर अद्वितीय रहस्यवाद है तो जायसी में, जिनकी भावुकता बहुत ही ऊँची कोटि की है। वे सूफियों की भक्तिभावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देख कर जगत के नाना रूपों में उस प्रियतम के रूपमाधुर्य की छाया देखते हैं और कहीं सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारों का 'पुरुष' के समागम के हेतु प्रकृति के शृंगार, उत्कंठा या विरहविकलता के रूप में अनुभव करते हैं। दूसरे प्रकार की भावना पद्मावत में अधिक मिलती है।

आरंभ में कह आए हैं कि 'पदमावत' के ढंग के रहस्यवादपूर्ण प्रबंधों की परंपरा जायसी से पहले की है। मृगावती, मधुमालती आदि की रचना जायसी के पहले हो चुकी थी और उनके पीछे भी ऐसे रचनाओं की परंपरा चली। सबमें रहस्यवाद मौजूद है। अत: हिंदी के पुराने साहित्य में 'रहस्यवादी कविसंप्रदाय' यदि कोई कहा जा सकता है तो इन कहानी कहनेवाले मुसलमान कवियों को ही।

जायसी कवि थे और भारतवर्ष के कवि थे। भारतीय पद्धति के कवियों की दृष्टि फारसवालों की अपेक्षा प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों पर कहीं

अधिक विस्तृत तथा उनके मर्मस्पर्शी स्वरूपों को कहीं अधिक परखनेवाली होती है। इससे उस रहस्यमयी सत्ता का आभास देने के लिए जायसी बहुत ही रमणीय और मर्मस्पर्शी दृश्यसंकेत उपस्थित करने में समर्थ हुए हैं। कबीर के चित्रों (इमैजरी) में न वह अनेकरूपता है, न वह मधुरता। देखिए, उस परोक्ष ज्योति और सौंदर्यसत्ता की ओर कैसी लौकिक दीप्ति और सौंदर्य के द्वारा जायसी संकेत करते हैं–

बहुतै जोति जोति ओहि भई।
रवि ससि, नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती।
जहँ जहँ बिहँसि सुभावहिं हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी।
नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसनजोति नग हीर।

प्रकृति के बीच दिखाई देनेवाली सारी दीप्ति उसी से है, इस बात का आभास पद्मावती के प्रति रत्नसेन के ये वाक्य दे रहे है।

अनु धनि! तू निसिअर निसि माहाँ। हौं दिनिअर जेहि कै तू छाहाँ।
चाँदहिं कहाँ जोति औ करा। सुरुज के जोति चाँद निरमरा।

अँगरेज कवि शेली की पिछली रचनाओं में इस प्रकार के रहस्यवाद की झलक बड़ी सुंदर दृश्यावली के बीच दिखाई देती है। स्त्रीत्व का आध्यात्मिक आदर्श उपस्थित करनेवाले (ऐपीसाइकीडियन) में प्रिया की मधुर वाणी प्रकृति के क्षेत्र में कहाँ-कहाँ सुनाई पड़ती है –

इन सालीटयूड्स,
हर वायस केम टु मी थ्रू द ह्विस्परिंग उड्स,
ऐंड फ्राम द फाउण्टेंस, ऐंड दि ओडर्स डीप
आव फ्लावर्स ह्विच, लाइक लिप्स मरमरिंग इन देयर स्लीप
आव द स्वीट किसेज ह्विच हैड लल्ड देम देयर,
ब्रीद्ड बट आव हर टु दि इनैमर्ड ऐअर,
ऐंड फ्राम द ब्रीजेज, ह्वेदर लो आर लाउड,
ऐंड फ्राम द रेन आव एव्री पासिंग क्लाउड,
ऐंड फ्राम द सिंगिंग आव द समर बड्र्स,
ऐंड फ्राम आल साउंड्स आल साइलेंस।

भावार्थ – निर्जन स्थानों के बीच मर्मर करते हुए काननों में, झरनों में, उन पुष्पों की परागगन्ध में जो उस दिव्य चुंबन के सुखस्पर्श से सोए हुए कुछ बर्राते

से मुग्धस पवन को उसका परिचय दे रहे हैं, इसी प्रकार मंद या तीव्र समीर में, प्रत्येक दौड़ते हुए मेघखंड की झंडी में, वसंत के विहंगमों के कलकूजन में तथा प्रत्येक ध्वनि में और नि:स्तब्धता में भी वाणी सुनता हूँ।

कबीरदास में यह बात नहीं है। उन्हें बाहर जगत में भगवान की रूपकला नहीं दिखाई देती। वे सिद्धों और योगियों के अनुकरण पर ईश्वर को केवल अंतस् में बताते हैं –

मो को कहाँ ढूँढ़ै बंदे मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद य ना काबे कैलास में॥

जायसी भी उसे भीतर बताते हैं –

पिउ हिरदय महँ भेंट न होई। को रे मिलाव, कहौं केहि रोइ!

पर, जैसा कि पहले दिखा चुके हैं, वे उसके रूप की छटा प्रकृति के नाना रूपों में भी देखते हैं।

मानस के भीतर उस प्रियतम के सामीप्य से उत्पन्न कैसे अपरिमित आनंद की, कैसे विश्वव्यापी आनंद की, व्यंजना जायसी की इन पंक्तियों में है –

देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा॥
गा अँधियार रैनि मसिछूटी। भा भिनसार किरिन रवि फूटी॥
कँवल बिगस तत बिहँसी देही। भँवर दसन होइ कै रस लेहीं।

देखि अर्थात् उस अखंड ज्योति का आभास पा कर वह मानसर (मानसरोवर और हृदय) जगमगा उठा। देखिए न, खिले कमल के रूप में उल्लास मानसर में चारों ओर फैला है। उस ज्योति के साक्षात्कार से अज्ञान छूट गया – प्रभात हुआ, पृथ्वी पर से अंधकार हट गया। आनंद से चेहरा (देही, बदन, मुँह) खिल उठा, बत्तीसी निकल आई1 – कमल खिल उठे और उन पर भौंरे दिखाई दे रहे हैं। अंतर्जगत् और बाह्यजगत का कैसा अपूर्व सामंजस्य है, कैसी बिंबप्रतिबिंब स्थिति है!

उस प्रियतम पुरुष के प्रेम से प्रकृति कैसी बिद्ध दिखाई देती है –

उन्ह बानन्ह अस को जो न मार? बेधि रहा सगरौ संसारा।
गगन नखत जो जाहि न गने। वै सब बान ओहि के हने।
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देहिं सब साखी।
रोवँ रोवँ मानुष तन ठाढ़े। सूतहि सूत बेध अस गाढ़े।
बरुनि चाप अस ओपहँ, बेधो रन बन ढाँख।
सौजहि तन सब रोवाँ, पंखिहि तन सब पाँख।

पृथ्वी और स्वर्ग, जीव और ईश्वर, दोनों एक थे, बीच में न जाने किसने इतना भेद डाल दिया है –

धरती सरग मिले हुत दोऊ। केइ निनार कै दीन्ह बिछोऊ।

जो इस पृथ्वी और स्वर्ग के वियोगत्व को समझेगा और उस वियोग में पूर्णरूप से सम्मिलित होगा उसी को वियोग सारी सृष्टि में इस प्रकार फैला दिखाई देगा –

सूरुज बूड़ि उठा होइ ताता। औ मजीठ टेसू बन राता।
भा बसंत, रातीं बनसपती। औ राते सब जोगी जती।
पुहुमि जो भीजि भएउ सब गेरू। औ राते सब पंखि पखेरू।
राती सती, अगिनि सब काया। गगन मेघ राते तेहि छाया।

सायं प्रभात न जाने कितने लोग मेघखंडों को रक्तवर्ण होते देखते हैं पर किस अनुराग से वे लाल हैं इसे जायसी जैसे रहस्यदर्शी भावुक ही समझते हैं।

प्रकृति के सारे महाभूत उस 'अमरधाम' तक पहुँचने का बराबर प्रयत्न करते रहते हैं पर साधना पूरी हुए बिना पहुँचना असंभव है –

धाइ जो बाजा कै मन साधा। मारा चक्र, भएउ दुइ आधा ।
चाँद सुरुज औ नखत तराई। तेहि डर अँतरिख फिरहिं सबाई।
पवन जाइ तहँ पहुँचौ चहा। मारा तैस लोटि भुइँ रहा।
अगिनि उठी, जरि बुझी निआना। धुँआ उठा, उठि बीच बिलाना।
पानि उठा, उठि जाइ न छूआ1। बहुरा रोइ, आइ भुइ चूआ।

इस अद्वैती रहस्यवाद के अतिरिक्त जायसी कहीं – कहीं उस रहस्यवाद में आ फँसे हैं, जो पाश्चात्यों की दृष्टि में 'झूठा रहस्यवाद' है। उन्होंने स्थान-स्थान पर हठयोग, रसायन आदि का भी आश्रय लिया है।

कबीर और जायसी का रहस्यवाद–तुलनात्मक विवेचन

काव्य की इस भावाभिव्यक्ति के बारे में विद्वानों के विविध विचार मिलते हैं। जैसे **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने लिखा है कि –"जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है, उसे रहस्यवाद कहते हैं।" **डॉ. श्याम सुन्दर दास** ने लिखा है कि –"चिन्तन के क्षेत्र का ब्रह्मवाद कविता के क्षेत्र में जाकर कल्पना और भावुकता का आधार पाकर रहस्यवाद का रूप पकड़ता

है।" **महाकवि जयशंकर प्रसाद** के अनुसार- "रहस्यवाद में अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहं का इदं से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।"

सुप्रसिद्ध रहस्यवादी कवयित्री **महादेवी वर्मा** ने–अपनी सीमा को असीम तत्त्व में खो देने को रहस्यवाद कहा है। डॉ. रामकुमार वर्मा का विचार है कि -रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता।

अत: यह कहा जा सकता है कि रहस्यवाद के अंतर्गत एक कवि उस अज्ञात एवं असीम सत्ता से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करता हुआ उसके प्रति अपने ऐसे प्रेमोद्‌गार व्यक्त करता है, जिसमें सुख-दु:ख, आनन्द-विषाद, संयोग-वियोग, रूदन-हास आदि घुले मिले रहते हैं और वह अपनी अन्त होने वाली सत्ता को अनन्त सत्ता में विलीन करके एक व्यापक एवं अखण्ड आनन्द का अनुभव किया करता है। कबीर और जायसी के रहस्यवाद के सम्बन्ध में विद्वानों की राय एक-दूसरे से भिन्न हैं।

कोई कबीर को ही रहस्यवादियों में सर्वश्रेष्ठ मानता है, तो कोई जायसी के रहस्यवाद में ही रमणीयता और सौन्दर्य के दर्शन करता है। कोई कबीर के रहस्यवाद को प्राय: नीरस और शुष्क मानता है। निम्नलिखित उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जायेगा -**डॉ. श्याम सुन्दर दास** के अनुसार–"रहस्यवादी कवियों में कबीर का ही आसन सबसे ऊँचा है। शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्हीं का है। प्रेमाख्यानक कवियों का रहस्यवाद तो उनके प्रबन्ध के बीच-बीच में बहुत जगह थिगली सा लगता है और प्रबन्ध से अलग उनका अभिप्राय ही नष्ट हो जाता है।" **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के अनुसार–"कबीर में जो रहस्यवाद है वह सर्वत्र एक भावुक या कवि का रहस्यवाद नहीं है। हिन्दी के कवियों में यदि कहीं स्मरणीय और सुन्दर रहस्यवाद है तो जायसी में, जिनकी भावुकता बहुत ही उच्चकोटि की है। वे सूफियों की भक्ति भावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखकर जगत के नाना रूपों में उस प्रियतम के रूप-माधुर्य की छाया देखते हैं और कहीं सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारों को पुरुष के समागम हेतु प्रकृति के शृंगार, उत्कंठा या विरह-विकलता के रूप में अनुभव करते हैं।"

डॉ. चन्द्रबली पाण्डेय के अनुसार –"कबीर का रहस्यवाद प्रायः शुष्क और नीरस है, पर जायसी आदि का ऐसा नहीं।"

कबीर और जायसी– दोनों ही हिन्दी साहित्य के सुन्दर रहस्यवादी कलाकार हैं। दोनों ने अपनी–अपनी भावना रूपी बधुओं की झाँकी अपने–अपने ढंग पर सँवारी है। वे दोनों बधुएँ रहस्यात्मकता की दृष्टि से समान होते हुए भी आत्मा की दृष्टि से एक–दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। कबीर की रहस्यात्मकता भारतीय हठयोग और औपनिषदिक विचारधारा के सुहाग से सम्भूत होने के कारण पूर्ण भारतीय हैं। यह बात दूसरी है कि उस पर चलते–चलते थोड़ा बहुत प्रभाव सूफी साधना का भी पड़ गया हो। किन्तु उसका सम्पूर्ण सौन्दर्य और निष्ठाएँ ठीक उसी प्रकार की हैं, जैसी आदर्श भारतीय बधुओं में पायी जाती है। अभारतीय सूफी–साधना और भारतीय अद्वैतवाद के संयोग से उत्पन्न उनकी (जायसी की) रहस्य–भावना कुछ बातों में भारतीय और कुछ बातों में अभारतीय है।

तुलनात्मक विवेचनजायसी और कबीर के रहस्यवाद को पूर्ण रूप से देखने के लिए उनकी प्रकृति को समझना आवश्यक है। सभी रहस्यवादी कवियों के काव्यों में प्रायः ये सात अवस्थाएँ पायी जाती हैं–1. जिज्ञासा, 2. महत्त्वदर्शन, 3. प्रयत्न, 4. विन एवं वेदना, 5. आभास, 6. अपरोक्ष अनुभूति और 7. चिरमिलन।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने रहस्यवाद की तीन अवस्थाओं का उल्लेख किया है–प्रथम–स्थिति में आत्मा परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ने के लिए अग्रसर होती है, द्वितीय– स्थिति में आत्मा परमात्मा से प्रेम करने लगती है और तृतीय–स्थिति में आत्मा और परमात्मा का पूर्ण मिलन अथवा एकीकरण हो जाता है। अब तक कबीर और जायसी के रहस्यवाद की तुलनात्मक विवेचना करने वाले विद्वानों ने केवल नीरसता और माधुर्य की तुलना की है। कुछ विद्वानों ने इस तथाकथित अन्तर का जायसी में प्रकृति के प्रति रुझान और कबीर में प्रकृति की उपेक्षा को माना है। विद्वानों ने जायसी के रहस्यवाद के पाँच प्रकार माने हैं –1. आध्यात्मिक रहस्यवाद 2. प्रकृति–मूलक रहस्यवाद 3. प्रेम मूलक रहस्यवाद 4. भौतिक रहस्यवाद तथा 5. अभिव्यक्ति मूलक रहस्यवाद इन रहस्यवादों में से प्रकृति मूलक रहस्यवाद को छोड़कर शेष सबका वर्णन कबीर के रहस्यवाद में मिलता है। कबीर ने प्रकृति–मूलक रहस्यवाद को नहीं अपनाया है। इसका कारण यह है कि कबीर में जहाँ प्रकृति अपने मिथ्यात्व के कारण तिरस्कृत है, वहाँ जायसी

में वही परमात्मा की झलक का साधन बन गई है। कबीर में आत्मा और परमात्मा के सौन्दर्य का प्रकाश होने के कारण प्रकृति स्वयं परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई है। जायसी के रहस्यवाद की सबसे बड़ी विशेषता उनकी प्रेम की पीर है। इसी प्रेम-तत्त्व के कारण उनका रहस्यवाद मधुर से मधुरतम बन गया है और इसी कारण उसमें विलास की झाँकिया मिलती हैं।

जायसी का रहस्यवाद सर्वत्र समष्टिमूलक के रूप में प्रस्तुत हुआ है। सूफीमत और इस्लाम के प्रति पूर्ण आस्था रखने के कारण कहीं-कहीं उनका रहस्यवाद सूफी सिद्धान्तों से पूर्ण रूप से प्रभावित मिलता है। इसके अतिरिक्त समष्टिमूलक दृष्टिकोण होने के कारण उनके रहस्यवाद की अभिव्यक्ति प्रायः अन्योक्ति और समासोक्ति द्वारा हुई है। इसी कारण वह बहुत सांकेतिक और व्यंजनात्मक हो गया है। रहस्यवादी के लिए आस्तिक होना पहली शर्त है। कबीर पूर्ण आस्तिक हैं। उन्होंने नास्तिकों के शून्य को भी ब्रह्म बना दिया है, परन्तु उनकी आस्तिकता परम्परा विश्वासों पर आधारित न होकर प्रत्यक्षानुभूति पर आश्रित है -देख्या है तो कस कहूँ, कहै तो को पतियाय। गूँगे केरी सरकरा, खाये औ बैठा मुस्काय। जायसी भी पूर्ण आस्तिक हैं, लेकिन उनकी आस्तिकता कबीर से भिन्न है। इस्लाम में प्रत्यक्षानुभूति पर विश्वास न कर ईमान पर किया जाता है। इस कारण उनमें भावना और कल्पना का प्राधान्य है—निमिख न लाग कर ओहि सबइ कीन्ह पल एक।

गगन अंतरिख राखा बाज खंभ बिन्दु टेक। उपास्य के मामले में दोनों के ही उपास्य सगुण और निर्गुण के समन्वित रूप वाले हैं। परन्तु जायसी की प्रेम-भावना समष्टिमूलक है, इसलिए वे अपने आराध्य का चिन्तन एक विराट सौन्दर्यमयी सत्ता के रूप में करते हैं। कबीर की भावना व्यष्टिमूलक है, इसलिए उसमें उस विराट सौन्दर्य के दर्शन नहीं होते। जायसी उसके सौन्दर्य वर्णन के लिए बाह्य साधनों का खुलकर उपयोग करते हैं, जबकि कबीर में बाह्य साधनों की अपेक्षाकृत न्यूनता है।

जायसी पद्मावती के सौन्दर्य में उसी विराट सौन्दर्य का प्रतिरूप देखते हैं—नयन जो देखा कमल भा, निर्मल नीर सरीर।हँसत जो देखा हँस भा, दसन जोति नगहीर। कबीर का ब्रह्म सुनि मण्डल बासी है -कोई ऐसा न मिले, सब विधि देहि बताय।सुनि मण्डल में पुरुष एक, ताही रहै ल्यौं लाय। दोनों ही तत्त्व रूप में ब्रह्म के उपासक हैं। दोनों ही शून्यवादी हैं। दोनों के उपास्य सौन्दर्य रूप हैं, किन्तु जायसी की सम्पूर्ण दृष्टि उसी आध्यात्मिक दिव्य सौन्दर्य से ओत-प्रोत

है। उनका लक्ष्य सौन्दर्य की प्राप्ति है। इसके विपरीत कबीर के पास अपने आराध्य के सौन्दर्य को व्यक्त करने के साधन नहीं हैं। वे उसे केवल प्रकाश-स्वरूप कहकर ही संतोष कर लेते हैं। यदि उन्होंने कहीं प्रयत्न भी किया है तो उसमें जायसी का-सा भावात्मक सरस एवं ग्राह्य सौन्दर्य नहीं आ पाया है। ब्रह्म की अनुभूति के विषय में दोनों समान विश्वास करते हैं। परन्तु कबीर-औपे आप चिनारिया, तब केत होय आनन्द रे, कहकर उसे विचार प्रधान बना देते हैं। जायसी-आप पिछौनें आपै आप" कहकर उसे भावना-प्रधान बना देते हैं। इस अनुभूति के लिए कबीर का विश्वास है कि—कुछ करनी कुछ करमगति, कछू पूरबला लेख" की सहायता से ही उस आलेख की अनुभूति की जा सकती है। इसके विपरीत जायसी—न जानौ कौन पौन लइे पाया, कहकर केवल आराध्य की कृपा पर ही विश्वास करते हैं।

कबीर और जायसी दोनों ने ही प्रेम रूपी अमृत का पान किया है, परन्तु जायसी के प्रेम में मादकता, कोमलता और भावुकता का प्राधान्य है। उनके अनुसार—प्रेम फाँद जो परा न छूटा। जिउ जाइ पै फाँद न टूटा। यह प्रेम की अग्नि बड़ी भयानक है, जो सारी सृष्टि में व्याप्त है। वह विरही और वह हृदय धन्य है, जिसमें यह समा जाती है—मुहम्मद चिनगी प्रेम की, सुनि महि गगन डराय। धनि बिरही और धनि हिया, जहै अस अगिनि समाय। विरह और मिलन के वर्णन में दोनों में कोई मौलिक अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। दोनों पर कुछ हद तक सूफी काव्य परम्परा का प्रभाव पड़ा है। दोनों को ही अपने प्रियतम का पता गुरु द्वारा मिलता है। कबीर को यह प्रेमतत्त्व के रूप में तथा जायसी को विरह-तत्त्व के रूप में प्राप्त होता है। कबीर को -गुरु ने प्रेम का अंग पढ़ाय दिया रे तथा जायसी को गुरु बिरह चिनड़गी जो मेला। सो सुलगाई लेइ जो चेला। जायसी का प्रेम रूप-लिप्सा जनित है और कबीर का संस्कार-मूलक। यही कारण है कि सूफियों के प्रेम में अलौकिक भक्ति के साथ-साथ लौकिक रति को भी महत्त्व मिला है।

जायसी का सम्पूर्ण काव्य सौन्दर्य और प्रेम की भावना से विभोर है। इस लौकिक सौन्दर्य और रति के कारण ही जायसी के रहस्यवाद में मादकता एवं विकास का पुट अत्यंत गहरा हो गया है। कबीर में इस प्रकार के वर्णन का अभाव है। जायसी और कबीर के प्रेम में विरह और मिलन के कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं -विरह -सब रग तंत रबान तन, विरह बजावै नित्त और न कोई सुनि सकै, कै साँई के चित्त। रकत ढरा माँसू गरा हाड़ भए सब संख। धनि सारस होई ररि मुई

आइ समेटहु पंख। मिलन -कहा मानसर चहा सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई, भा निरमर तेन्ह पायन परसें। पावा रूप रूप के दरसें मलै समीर बास तन आई। भा सीतल गै तपन बुझाईन जनौं कौनु पौन लै आवा। पुन्नि दसा मैं पाप गँवावा, हरि संगति सीतल भया, मिटी मोह की ताप।

निज बासुरि सुख निधि लह्ध्या, जब अन्तर प्रगट्या आप।

आध्यात्मिक अनुभूति डॉ. त्रिगुणायत के अनुसार कुमारी अण्डरहिल नामक अंग्रेज महिला ने इस अनुभूति की पाँच अवस्थाएँ मानी हैं -1. आत्मा की जाग्रतावस्था–इसमें ब्रह्म-जिज्ञासा उत्पन्न होती है और साधक ज्ञान और वैराग्य की ओर उन्मुख होने लगता है। 2. आत्मा के परिष्करण की स्थिति–इसमें साधक विविध प्रकार की साधनाओं में लग जाता है। 3. आत्मा की आंशिक अनुभूति की स्थिति–साधक इसमें विविध ध्वनियाँ सुनता है और विविध दृश्य देखता है। 4. रहस्यानुभूति के विघ्नों की अवस्था-इसमें ईश्वरानुभूति में बाधाएँ पड़ने लगती है। 5. तादात्म्य की स्थिति–यह आत्मा-परमात्मा के साक्षात्कार और तादात्म्य की स्थिति है।

उपर्युक्त सभी स्थितियों का वर्णन सूफी तो बड़े विस्तार से करते हैं, किन्तु कबीर ने उनका वर्णन समान रूप से किया है। पहली स्थिति जो जाग्रतावस्था कहलाती है, में कबीर और जायसी ने गहरी जिज्ञासा और मिलन के लिए व्याकुलता दिखाई है। जायसी का रत्नसेन जब अपनी प्रियतमा के दिव्य सौन्दर्य की तन्मयता से जागता है तो सारा संसार उसे नीरस लगने लगता है और उसमें वैराग्य भावना उत्पन्न हो जाती है–जब भा चेत उठा बैरागा(जायसी), कबीर वैराग्य को महत्त्व नहीं देते। उनके लिए ज्ञान ही सब कुछ है–कबीर जाग्याहि चाहिए, क्या घर क्या वैराग।

(कबीर)साधना की दूसरी अवस्था में साधक विरह से व्यथित होने के साथ ही आराध्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने लगता है। कबीर के विरह वर्णन में सूफी और भक्त दोनों पद्धतियों का प्रभाव है। भक्तों से प्रभावित होकर वे -जिन पर गोविन्द बीछुड़े, तिनको कौन हवाल, कहने लगते हैं और सूफियों का अनुसरण करते हुए कहते हैं–अंषड़िया झांई पड़ी, पंथ निहारि निहारि। जीभड़िया छाला पड़या, राम पुकारि पुकारि। जायसी ने कबीर की यौगिक साधना की तरह सूफी-साधना अपनाई है। इसमें अपना कल्ब (हृदय) शुद्ध करके रूह को विकसित करना पड़ता है। इस शुद्धि के लिए साधक को सात मुकामात से होकर गुजरना पड़ता है। साथ ही उसे ईश्वर स्मरण और जप आदि भी करना पड़ता है।

ये हालात कहलाते हैं। इस प्रकार साधक शुद्धाचरण आदि की सहायता से अपने शरीर और मन की शुद्धि कर साधना के मार्ग पर आगे बढ़ता है। इस मार्ग पर चार पड़ाव पड़ते है–शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारफत। अन्तिम अवस्था हाल अर्थात् भावातिरेक की चरम अवस्था होती है और यहीं आकर रूह फना होकर आराध्य से जा मिलती है। जायसी में उपर्युक्त सम्पूर्ण अवस्थाओं के चित्रण मिलते हैं। उन्होंने प्रियतमा की प्राप्ति–चार बसेरे सों चढैं, सत सों उतरे पार, कहकर इसी सूफी साधना पद्धति का पालन किया है। जबकि कबीर ज्ञान, वैराग्य और योग द्वारा आत्म परिष्करण कर भक्ति में तन्मय हो साक्षात्कार करना चाहते हैं। इसके लिए उन्होंने स्थान–स्थान पर–जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, जैसे सिद्धान्त, वाक्य कहकर ज्ञान को प्रधानता दी है। साधना की तीसरी अवस्था में साधक को आराध्य की झलक–सी मिल जाती है। कबीर इस स्थिति का आभास पाकर हर्ष से उन्मत्त हो उठते हैं। यथा–जरा मरण व्यापै नहीं, युवा न सुनिये कोय। चलि कबीर तेहि देसिडे, जहँ वैद विधाता होय। इस वर्णन में तीव्रता तो है, मगर सरसता और कोमलता की रमणीयता नहीं आ पाई है। जायसी के ऐसे वर्णनों में पर्याप्त सरसता और माधुर्य है। प्रियतम की झलक का वर्णन करने के उपरांत जायसी उस लोक का चित्रण करते हैं–जहाँ न राति न दिवस है, जहाँ न पौन न पानि। तेहि बन सुअटा चल बसा, कौन मिलावै आनि। चौथी अवस्था विघ्न की अवस्था है। साधक के मार्ग में अनेक विघ्न बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। कबीर इन बाधाओं को माया का रूप देते हैं। माया ठगिनी का रूप धारण कर अनेक विघ्न बाधाएँ उत्पन्न करती है। इसी प्रकार जायसी ने भी अपने नायक के मार्ग में पड़ने वाली विविध कठिनाईयों का वर्णन बड़े विस्तार से किया है, परन्तु जायसी ने कबीर के समान माया के विभिन्न जालों द्वारा उत्पन्न कठिनाईयों की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया है। साधक की अंतिम स्थिति मिलन की अवस्था है। मिलन होने पर साधक पूर्ण सिद्धावस्था को प्राप्त हो जाता है।

कबीर आराध्य से मिलन मात्र की कल्पना से काँप उठते हैं। जायसी ने मिलन से पूर्व की इस रोमांचित अवस्था का चित्रण ऐसा ही किया है, किन्तु उसमें लौकिकता का प्राधान्य है। जायसी के इस वर्णन में रमणीयता है, एक अलौकिक आनन्द है। इसकी तुलना में कबीर का वर्णन शुष्क और नीरस है। इसका कारण यह है कि कबीर उपनिषदों से प्रभावित हैं, जबकि जायसी सूफी सौन्दर्यवाद और प्रतिबिम्बवाद से प्रभावित है। पूर्ण मिलन ही दोनों साधकों की साधना की पूर्ण स्थिति है। इस स्थिति के परिणाम स्वरूप कबीर तो पूर्ण रूप

से जीवनमुक्त हो जाते हैं और अमर हो जाते हैं–हम न मरे मरिहैं संसार, हमकू मिले जियावन हारा।

रहस्यवाद एक आध्यात्मिक अनुभूति का परिणाम है। अतः इसकी अभिव्यक्ति साधारण रूप से नहीं हो सकती। कबीर और जायसी दोनों ने इसकी अभिव्यक्ति अलग-अलग ढंग से की है। कबीर ने प्रतीक-पद्धति, रूपक पद्धति तथा उलटबाँसियों की सहायता से अपने रहस्यवाद की अभिव्यक्ति की है तो जायसी ने अपनी स्वानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए प्रेम-कथा का सहारा लेकर उसमें असफल अन्योक्ति और सफल समासोक्ति का प्रयोग किया हैं। साथ ही उन्होंने प्रतीक पद्धति को भी अपनाया है।

अतः कहा जा सकता है कि जायसी और कबीर हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ रहस्यवादी कवि हैं। एक (कबीर) का रहस्यवाद आध्यात्मिक, एकान्तिक, व्यष्टिमूलक, सजीव और वर्णनात्मक है, तो दूसरे (जायसी) का सरस, संकेतात्मक और समष्टिमूलक है।

3

पद्मावत

पद्मावत हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत सूफी परम्परा का प्रसिद्ध महाकाव्य है। यह हिन्दी की अवधी बोली में है और चौपाई, दोहों में लिखी गई है। चौपाई की प्रत्येक सात अर्धालियों के बाद दोहा आता है और इस प्रकार आए हुए दोहों की संख्या 653 है।

इसकी रचना सन् 947 हिजरी. (संवत् 1540) में हुई थी। इसकी कुछ प्रतियों में रचनातिथि 927 हि. मिलती है, किंतु वह असंभव है। अन्य कारणों के अतिरिक्त इस असंभावना का सबसे बड़ा कारण यह है कि मलिक साहब का जन्म ही 900 या 906 हिजरी में हुआ था। ग्रंथ के प्रारंभ में शाहेवक्त के रूप में शेरशाह की प्रशंसा है, यह तथ्य भी 947 हि. को ही रचनातिथि प्रमाणित करता है। 927 हि. में शेरशाह का इतिहास में कोई स्थान नहीं था।

पद्मावत एक प्रेमगाथा है, जो आध्यात्मिक स्वरूप में है। जायसी के महाकाव्य 'पद्मावत' की कथा प्रेममार्गी सूफी कवियों की भांति काल्पनिक न होकर रत्नसेन और पद्मावती (पद्मिनी) की प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथा पर आधारित है। इस प्रेमगाथा में सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती और चित्तौड़ के राजा रत्नसेन के प्रणय का वर्णन है। 'नागमती के विरह-वर्णन' में तो जायसी ने अपनी संवेदना गहन रूप से वर्णित की है। कथा का द्वितीय भाग ऐतिहासिक है, जिसमें चित्तौड़ पर अलाउद्दीन खिल्जी के आक्रमण और 'पद्मावती के जौहर' का सजीव वर्णन है। 'पद्मावत' मसनवी शैली में रचित एक प्रबंध काव्य है।

इस महाकाव्य में कुल 57 खंड हैं। इस महाकाव्य में पद्मावती एवं रत्नसेन की लौकिक प्रेम कहानी के द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना की गयी है। इस काव्य का प्रारम्भ काल्पनिक कथा से है और अंत इतिहास पर आधारित है। जायसी ने इतिहास और कल्पना, दोनों का मिश्रण किया है। जायसी ही लिखते हैं कि उन्होंने 'पद्मावत' की रचना 927 हिजरी में प्रारंभ की।

परिचय

जायसी सूफी संत थे और इस रचना में उन्होंने नायक रतनसेन और नायिका पद्मिनी की प्रेमकथा को विस्तारपूर्वक कहते हुए प्रेम की साधना का संदेश दिया है। रतनसेन ऐतिहासिक व्यक्ति है, वह चित्तौड़ का राजा है, पद्मावती उसकी वह रानी है, जिसके सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर तत्कालीन सुल्तान अलाउद्दीन उसे प्राप्त करने के लिये चित्तौड़ पर आक्रमण करता है और यद्यपि युद्ध में विजय प्राप्त करता है तथापि पद्मावती के जल मरने के कारण उसे नहीं प्राप्त कर पाता है। इसी अर्ध ऐतिहासिक कथा के पूर्व रतनसेन द्वारा पद्मावती के प्राप्त किए जाने की व्यवस्था जोड़ी गई है, जिसका आधार अवधी क्षेत्र में प्रचलित हीरामन सुग्गे की एक लोककथा है। कथा संक्षेप में इस प्रकार है:–

हीरामन की कथा

सिंहल द्वीप (श्रीलंका) का राजा गंधर्वसेन था, जिसकी कन्या पद्मावती थी, जो पद्मिनी थी। उसने एक सुग्गा पाल रखा था, जिसका नाम हीरामन था। एक दिन पद्मावती की अनुपस्थिति में बिल्ली के आक्रमण से बचकर वह सुग्गा भाग निकला और एक बहेलिए के द्वारा फँसा लिया गया। उस बहेलिए से उसे एक ब्राह्मण ने मोल ले लिया, जिसने चित्तौड़ आकर उसे वहाँ के राजा रतनसिंह राजपूत के हाथ बेच दिया। इसी सुग्गे से राजा ने पद्मिनी (पद्मावती) के अद्भुत सौंदर्य का वर्णन सुना, तो उसे प्राप्त करन के लिये योगी बनकर निकल पड़ा।

अनेक वनों और समुद्रों को पार करके वह सिंहल पहुँचा। उसके साथ में वह सुग्गा भी था। सुग्गे के द्वारा उसने पद्मावती के पास अपना प्रेमसंदेश भेजा। पद्मावती जब उससे मिलने के लिये एक देवालय में आई, उसको देखकर वह मूर्छित हो गया और पद्मावती उसको अचेत छोड़कर चली गई। चेत में आने पर रतनसेन बहुत दु:खी हुआ। जाते समय पद्मावती ने उसके हृदय पर चंदन से यह

लिख दिया था कि उसे वह तब पा सकेगा जब वह सात आकाशों जैसे ऊँचे सिंहलगढ़ पर चढ़कर आएगा। अतः उसने सुग्गे के बताए हुए गुप्त मार्ग से सिंहलगढ़ के भीतर प्रवेश किया। राजा को जब यह सूचना मिली तो उसने रतनसेन को शूली देने का आदेश दिया किंतु जब हीरामन से रतनसिंह राजपूत के बारे में उसे यथार्थ तथ्य ज्ञात हुआ, उसने पद्मावती का विवाह उसके साथ कर दिया।

रतनसिंह राजपूत पहले से ही विवाहित था और उसकी उस विवाहिता रानी का नाम नागमती था। रतनसेन के विरह में उसने बारह महीने कष्ट झेल कर किसी प्रकार एक पक्षी के द्वारा अपनी विरहगाथा रतनसिंह राजपूत के पास भिजवाई और इस विरहगाथा से द्रवित होकर रतनसिंह पद्मावती को लेकर चित्तौड़ लौट आया।

यहाँ, उसकी सभा में राघव नाम का एक तांत्रिक था, जो असत्य भाषण के कारण रतनसिंह द्वारा निष्कासित होकर तत्कालीन सुल्तान अलाउद्दीन की सेवा में जा पहुँचा और जिसने उससे पद्मावती के सौंदर्य की बड़ी प्रशंसा की। अलाउद्दीन पद्मावती के अद्भुत सौंदर्य का वर्णन सुनकर उसको प्राप्त करने के लिये लालायित हो उठा और उसने इसी उद्देश्य से चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। दीर्घ काल तक उसने चित्तौड़ पर घेरा डाल रखा, किंतु कोई सफलता होती उसे न दिखाई पड़ी, इसलिये उसने धोखे से रतनसिंह राजपूत को बंदी करने का उपाय किया। उसने उसके पास संधि का संदेश भेजा, जिसे रतन सिंह राजपूत ने स्वीकार कर अलाउद्दीन को विदा करने के लिये गढ़ के बाहर निकला, अलाउद्दीन ने उसे बंदी कर दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया।

चित्तौड़ में पद्मावती अत्यंत दुःखी हुई और अपने पति को मुक्त कराने के लिये वह अपने सामंतों गोरा तथा बादल के घर गई। गोरा बादल ने रतनसिह राजपूत को मुक्त कराने का बीड़ा लिया। उन्होंने सोलह सौ डोलियाँ सजाईं जिनके भीतर राजपूत सैनिकों को रखा और दिल्ली की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने यह कहलाया कि पद्मावती अपनी चेरियों के साथ सुल्तान की सेवा में आई है और अंतिम बार अपने पति रतनसेन से मिलने के लिय आज्ञा चाहती है। सुल्तान ने आज्ञा दे दी। डोलियों में बैठे हुए राजपूतों ने रतनसिंह राजपूत को बेड़ियों से मुक्त किया और वे उसे लेकर निकल भागे। सुल्तानी सेना ने उनका पीछा किया, किंतु रतन सिंह राजपूत सुरक्षित रूप में चित्तौड़ पहुँच ही गया।

जिस समय वह दिल्ली में बंदी था, कुंभलनेर के राजा देवपाल ने पद्मावती के पास एक दूत भेजकर उससे प्रेमप्रस्ताव किया था। रतन सिंह राजपूत से मिलने पर जब पद्मावती ने उसे यह घटना सुनाई, वह चित्तौड़ से निकल पड़ा और कुंभलनेर जा पहुँचा। वहाँ उसने देवपाल को द्वंद्व युद्ध के लिए ललकारा। उस युद्ध में वह देवपाल की सेल से बुरी तरह आहत हुआ और यद्यपि वह उसको मारकर चित्तौड़ लौटा किंतु देवपाल की सेल के घाव से घर पहुँचते ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। पद्मावती और नागमती ने उसके शव के साथ चितारोहण किया। अलाउद्दीन भी रतनसिंह राजपूत का पीछा करता हुआ चित्तौड़ पहुँचा, किंतु उसे पद्मावती न मिलकर उसकी चिता की राख ही मिली।

इस कथा में जायसी ने इतिहास और कल्पना, लौकिक और अलौकिक का ऐसा सुंदर सम्मिश्रण किया है कि हिंदी साहित्य में दूसरी कथा इन गुणों में 'पदमावत' की ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकी है। प्रायः यह विवाद रहा है कि इसमें कवि ने किसी रूपक को भी निभाने का यत्न किया है। रचना के कुछ संस्करणों में एक छंद भी आता है, जिसमें संपूर्ण कथा को एक आध्यात्मिक रूपक बताया गया है और कहा गया है कि चित्तौड़ मानव का शरीर है, राजा उसका मन है, सिंहल उसका हृदय है, पदमिनी उसकी बुद्धि है, सुग्गा उसका गुरु है, नागमती उसका लौकिक जीवन है, राघव शैतान है और अलाउद्दीन माया है, इस प्रकार कथा का अर्थ समझना चाहिए। किंतु यह छंद रचना की कुछ ही प्रतियों में मिलता है और वे प्रतियाँ भी ऐसी ही हैं, जो रचना की पाठपरंपरा में बहुत नीचे आती है। इसके अतिरिक्त यह कुंजी रचना भर में हर जगह काम भी नहीं देती है—उदाहरणार्थ गुरु-चेला-संबंध सुग्गे और रतनसेन में ही नहीं है, वह रचना के भिन्न-भिन्न प्रसंगों में रतनसेन-पद्मावती, पद्मावती-रतनसेन और रतनसेन तथा उसके साथ के उन कुमारों के बीच भी कहा गया है, जो उसके साथ सिंहल जाते हैं। वस्तुतः इसी से नहीं, इस प्रकार की किसी कुंजी के द्वारा भी कठिनाई हल नहीं होती है और उसका कारण यही है कि किसी रूपक के निर्वाह का पूरी रचना में यत्न किया ही नहीं गया है। जायसी का अभीष्ट केवल प्रेम का निरूपण करना ज्ञात होता है। वे स्थूल रूप में प्रेम के दो चित्र प्रस्तुत-करते हैं—एक तो वह जो आध्यात्मिक साधन के रूप में आता है, जिसके लिये प्राणों का उत्सर्ग भी हँसते-हँसते किया जा सकता है, रतनसेन और पद्मावती का प्रेम इसी प्रकार का है—रतनसेन पद्मावती को पाने के लिये सिंहलगढ़ में प्रवेश करता है और शूली पर चढ़ने के लिये हँसते-हँसते आगे

बढ़ता है, पद्मावती रतनसेन के शव के साथ हँसते-हँसते चितारोहण करती है और अलाउद्दीन जैसे महान सुल्तान की प्रेयसी बनने का लोभ भी अस्वीकार कर देती है। दूसरा प्रेम वह है, जो अलाउद्दीन पद्मावती से करता है। दूसरे की विवाहिता पत्नी को वह अपने भौतिक बल से प्राप्त करना चाहता है। किंतु जायसी प्रथम प्रकार के प्रेम की विजय और दूसरे प्रकार के प्रेम की पराजय दिखाते हैं। दूसरा उनकी दृष्टि में हेय और केवल वासना है, प्रेम पहला ही है। जायसी इस प्रेम को दिव्य कहते हैं।

कथानक

कवि सिंहलद्वीप, उसके राजा गन्धर्वसेन, राजसभा, नगर, बगीचे इत्यादि का वर्णन करके पद्मावती के जन्म का उल्लेख करता है। राजभवन में 'हीरामन' नाम का एक अद्भुत सूआ (तोता) था जिसे पद्मावती बहुत चाहती थी और सदा उसी के पास रहकर अनेक प्रकार की बातें कहा करती थी। पद्मावती क्रमशः सयानी हुई और उसके रूप की ज्योति भूमण्डल में सबसे ऊपर हुई। जब उसका कहीं विवाह न हुआ तब वह रात दिन हीरामन से इसी बात की चर्चा किया करती थी। सूए ने एक दिन कहा कि यदि कहो तो देश देशान्तर में फिर कर मैं तुम्हारे योग्य वर ढूंढूं। राजा को जब इस बातचीत का पता लगा तब उसने क्रुद्ध होकर सूए को मार डालने की आज्ञा दी। पद्मावती ने विनती कर किसी प्रकार सूए के प्राण बचाए। सूए ने पद्मावती से विदा माँगी, पर पद्मावती ने प्रेम के मारे सूए को रोक लिया। सूआ उस समय तो रुक गया, पर उसके मन में खटका बना रहा।

सूए का बिकना

एक दिन पद्मावती सखियों को लिए हुए मानसरोवर में स्नान और जलक्रीड़ा करने गई। सूए ने सोचा कि अब यहाँ से चटपट चल देना चाहिए। वह वन की ओर उड़ा, जहाँ पक्षियों ने उसका बड़ा सत्कार किया। दस दिन पीछे एक बहेलिया हरी पत्तियों की टट्टी लिए उस वन में चला आ रहा था और पक्षी तो उस चलते पेड़ को देखकर उड़ गए पर हीरामन चारे के लोभ में वहीं रहा। अन्त में बहेलिये ने उसे पकड़ लिया और बाजार में उसे बेचने के लिए ले गया। चित्तौड़ के एक व्यापारी के साथ एक दीन ब्राह्मण भी कहीं से रुपये लेकर लोभ की आशा से सिंहल की हाट में आया था। उसने सूए को पण्डित देख मोल ले

लिया और लेकर चित्तौड़ आया। चित्तौड़ में उस समय राजा चित्रसेन मर चुका था और उसका बेटा 'रत्नसेन' गद्दी पर बैठा था। प्रशंसा सुनकर रत्नसेन ने लाख रुपये देकर हीरामन सूए को मोल ले लिया।

सूए द्वारा पद्मावती का बखान

एक दिन रत्नसेन कहीं शिकार को गया था। उसकी रानी नागमती सूए के पास आई और बोली – 'मेरे समान सुन्दरी और भी कोई संसार में है?' इस पर सूआ हँसा और उसने सिंहल की पद्मिनी स्त्रियों का वर्णन करके कहा कि उनमें और तुममें दिन और अंधेरी रात का अन्तर है। रानी ने सोचा कि यदि यह तोता रहेगा तो किसी दिन राजा से भी ऐसा ही कहेगा और वह मुझसे प्रेम करना छोड़कर पद्मावती के लिए जोगी होकर निकल पड़ेगा। उसने अपनी धाय से उसे ले जाकर मार डालने को कहा। धाय ने परिणाम सोचकर उसे मारा नहीं, छिपा रखा। जब राजा ने लौटकर सूए को न देखा तब उसने बड़ा कोप किया। अन्त में हीरामन उसके सामने लाया गया और उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजा को पद्मावती का रूप वर्णन सुनने की बड़ी उत्कण्ठा हुई और हीरामन ने उसके रूप का लम्बा चौड़ा वर्णन किया। उस वर्णन को सुन राजा बेसुध हो गया। उसके हृदय में ऐसी प्रबल अभिलाषा जागी कि वह रास्ता बताने के लिए हीरामन को साथ ले जोगी होकर घर से निकल पड़ा।

रत्नसेन का सिंहल जाना

उसके साथ सोलह हजार कुँवर भी जोगी होकर चले। मध्य प्रदेश के नाना दुर्गम स्थानों के बीच होते हुए सब लोग कलिंग देश में पहुँचे। वहाँ के राजा गजपति से जहाज लेकर रत्नसेन ने और सब जोगियों के सहित सिंहल द्वीप की ओर प्रस्थान किया। क्षार समुद्र, क्षीर समुद्र, दधि समुद्र, उदधि समुद्र, सुरा समुद्र और किलकिला समुद्र को पार करके वे सातवें 'मानसरोवर समुद्र' में पहुँचे जो सिंहलद्वीप के चारों ओर है। सिंहलद्वीप में उतरकर जोगी रत्नसेन तो अपने सब जोगियों के साथ महादेव के मन्दिर में बैठकर तप और पद्मावती का ध्यान करने लगा और हीरामन पद्मावती से भेंट करने गया। जाते समय वह रत्नसेन से कहता गया कि बसंत पंचमी के दिन पद्मावती इसी महादेव के मण्डप में वसन्तपूजा करने आएगी, उस समय तुम्हें उसका दर्शन होगा और तुम्हारी आशा पूर्ण होगी।

बहुत दिन पर हीरामन को देख पद्मावती बहुत रोई। हीरामन ने अपने निकल भागने और बेचे जाने का वृत्तान्त कह सुनाया। इसके उपरान्त उसने रत्नसेन के रूप, कुल, ऐश्वर्य, तेज आदि की बड़ी प्रशंसा करके कहा कि वह सब प्रकार से तुम्हारे योग्य वर है और तुम्हारे प्रेम में जोगी होकर यहाँ तक आ पहुँचा है। पद्मावती ने उसकी प्रेमव्यथा सुनकर जयमाल देने की प्रतिज्ञा की और कहा कि वसन्त पंचमी के दिन पूजा के बहाने मैं उसे देखने जाऊँगी। सूआ यह समाचार लेकर राजा के पास मंडप में लौट आया।

वसन्त पंचमी पर पद्मावती और रत्नसेन का मिलना

वसन्त पंचमी के दिन पद्मावती सखियों के सहित मंडप में गई और उधर भी पहुँची जिधर रत्नसेन और उसके साथी जोगी थे। पर ज्यों ही रत्नसेन की ऑखें उस पर पड़ीं, वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। पद्मावती ने रत्नसेन को सब प्रकार से वैसा ही पाया जैसा सूए ने कहा था। वह मूछित जोगी के पास पहुँची और उसे होश में लाने के लिए उस पर चन्दन छिड़का। जब वह न जागा तब चन्दन से उसके हृदय पर यह बात लिखकर वह चली गई कि 'जोगी, तूने भिक्षा प्राप्त करने योग्य योग नहीं सीखा, जब फलप्राप्ति का समय आया तब तू सो गया।'

पार्वती द्वारा रत्नसेन की परीक्षा लेना

राजा को जब होश आया तब वह बहुत पछताने लगा और जल कर मरने को तैयार हुआ। सब देवताओं को भय हुआ कि यदि कहीं यह जला तो इसकी घोर विरहाग्नि से सारे लोक भस्म हो जाएँगे। उन्होंने जाकर महादेव पार्वती के यहाँ पुकार की। महादेव कोढ़ी के वेश में बैल पर चढ़े राजा के पास आए और जलने का कारण पूछने लगे। इधर पार्वती की, जो महादेव के साथ आई थीं, यह इच्छा हुई कि राजा के प्रेम की परीक्षा लें। ये अत्यन्त सुन्दरी अप्सरा का रूप धारणकर आई और बोली – 'मुझे इन्द्र ने भेजा है। पद्मावती को जाने दे, तुझे अप्सरा प्राप्त हुई।' रत्नसेन ने कहा – 'मुझे पद्मावती को छोड़ और किसी से कुछ प्रयोजन नहीं।' पार्वती ने महादेव से कहा कि रत्नसेन का प्रेम सच्चा है। रत्नसेन ने देखा कि इस कोढ़ी की छाया नहीं पड़ती है, इसके शरीर पर मक्खियाँ नहीं बैठती हैं और इसकी पलकें नहीं गिरती हैं, अतः यह निश्चय ही कोई सिद्ध पुरुष है। फिर महादेव को पहचानकर वह उनके पैरों पर गिर पड़ा। महादेव ने

उसे सिद्धि गुटिका दी और सिंहलगढ़ में घुसने का मार्ग बताया। सिद्धि गुटिका पाकर रत्नसेन सब जोगियों को लिए सिंहलगढ़ पर चढ़ने लगा।

रत्नसेन का पकड़ा जाना

राजा गन्धर्वसेन के यहाँ जब यह खबर पहुँची तब उसने दूत भेजे। दूतों से जोगी रत्नसेन ने पद्मिनी के पाने का अभिप्राय कहा। दूत क्रुद्ध होकर लौट गए। इस बीच हीरामन रत्नसेन का प्रेमसन्देश लेकर पद्मावती के पास गया और पद्मावती का प्रेमभरा संदेश लाकर उसने रत्नसेन से कहा। इस सन्देश से रत्नसेन के शरीर में और भी बल आ गया। गढ़ के भीतर जो अगाध कुण्ड था वह रात को उसमें धँसा और भीतरी द्वार को, जिसमें वज्र के किवाड़ लगे थे, उसने जा खोला। पर इस बीच सबेरा हो गया और वह अपने साथी जोगियों के सहित घेर लिया गया। राजा गन्धर्वसेन के यहाँ विचार हुआ कि जोगियों को पकड़कर सूली दे दी जाय। दल बल के सहित सब सरदारों ने जोगियों पर चढ़ाई की। रत्नसेन के साथी युद्ध के लिए उत्सुक हुए पर रत्नसेन ने उन्हें यह उपदेश देकर शान्त किया कि प्रेममार्ग में क्रोध करना उचित नहीं। अन्त में सब जोगियों सहित रत्नसेन पकड़ा गया। इधर यह सब समाचार सुन पद्मावती की बुरी दशा हो रही थी। हीरामन सूए ने जाकर उसे धीरज बँधाया कि रत्नसेन पूर्ण सिद्ध हो गया है, वह मर नहीं सकता।

युद्ध और रत्नसेन का पद्मिनी से विवाह

जब रत्नसेन को बाँधकर सूली देने के लिए लाए तब जिसने उसे देखा सबने कहा कि यह कोई राजपुत्र जान पड़ता है। इधर सूली की तैयारी हो रही थी, उधर रत्नसेन पद्मावती का नाम रट रहा था। महादेव ने जब जोगी पर ऐसा संकट देखा तब वे और पार्वती भाट भाटिनी का रूप धरकर वहाँ पहुँचे। इस बीच हीरामन सूआ भी रत्नसेन के पास पद्मावती का यह संदेश लेकर आया कि 'मैं भी हथेली पर प्राण लिए बैठी हूँ, मेरा जीना मरना तुम्हारे साथ है।' भाट (जो वास्तव में महादेव थे) ने राजा गन्धर्वसेन को बहुत समझाया कि यह जोगी नहीं राजा और तुम्हारी कन्या के योग्य वर है, पर राजा इस पर और भी क्रुद्ध हुआ। इस बीच जोगियों का दल चारों ओर से लड़ाई के लिए चढ़ा। महादेव के साथ हनुमान आदि सब देवता जोगियों की सहायता के लिए आ खड़े हुए। गन्धर्वसेन की सेना के हाथियों का समूह जब आगे बढ़ा तब हनुमान जी ने अपनी लम्बी

पूँछ में सबको लपेटकर आकाश में फेंक दिया। राजा गन्धर्वसेन को फिर महादेव का घण्टा और विष्णु का शंख जोगियों की ओर सुनाई पड़ा और साक्षात शिव युद्धस्थल में दिखाई पड़े। यह देखते ही गन्धर्वसेन महादेव के चरणों पर जा गिरा और बोला – 'कन्या आपकी है, जिसे चाहिए उसे दीजिए'। इसके उपरान्त हीरामन सूए ने आकर राजा रत्नसेन के चित्तौड़ से आने का सब वृत्तान्त कह सुनाया और गन्धर्वसेन ने बड़ी धूमधाम से रत्नसेन के साथ पद्मावती का विवाह कर दिया। रत्नसेन के साथी जो सोलह हजार कुँवर थे, उन सबका विवाह भी पद्मिनी स्त्रियों के साथ हो गया और सब लोग बड़े आनन्द के साथ कुछ दिनों तक सिंहल में रहे।

नागमती का विरह

इधर चित्तौड़ में वियोगिनी नागमती को राजा की बाट जोहते एक वर्ष हो गया। उसके विलाप से पशु पक्षी विकल हो गए। अन्त में आधी रात को एक पक्षी ने नागमती के दु:ख का कारण पूछा। नागमती ने उससे रत्नसेन के पास पहुँचाने के लिए अपना संदेसा कहा। वह पक्षी नागमती का संदेसा लेकर सिंहलद्वीप गया और समुद्र के किनारे एक पेड़ पर बैठा। संयोग से रत्नसेन शिकार खेलते-खेलते उसी पेड़ के नीचे जा खड़ा हुआ। पक्षी ने पेड़ पर से नागमती की दु:ख कथा और चित्तौड़ की हीन दशा का वर्णन किया। रत्नसेन का जी सिंहल से उचटा और उसने स्वदेश की ओर प्रस्थान किया। चलते समय उसे सिंहल के राजा के यहाँ से विदाई में बहुत सा सामान और धन मिला। इतनी अधिक सम्पत्ति देख राजा के मन में गर्व और लोभ हुआ। वह सोचने लगा कि इतना अधिक धन लेकर यदि मैं स्वदेश पहुँचा तो फिर मेरे समान संसार में कौन है। इस प्रकार लोभ ने राजा को आ घेरा।

समुद्र का क्रोध

समुद्रतट पर जब रत्नसेन आया तब समुद्र याचक का रूप धरकर राजा से दान माँगने आया, पर राजा ने लोभवश उसका तिरस्कार कर दिया। राजा आधे समुद्र में भी नहीं पहुँचा था कि बड़े जोर का तूफान आया, जिससे जहाज दक्खिन लंका की ओर बह गए। वहाँ विभीषण का एक राक्षस माँझी मछली मार रहा था। वह अच्छा आहार देख राजा से आकर बोला कि चलो हम तुम्हें रास्ते पर लगा दें। राजा उसकी बातों में आ गया। वह राक्षस सब जहाजों को एक

भयंकर समुद्र में ले गया, जहाँ से निकलना कठिन था। जहाज चक्कर खाने लगे और हाथी, घोड़े, मनुष्य आदि डूबने लगे। वह राक्षस आनन्द से नाचने लगा। इस बीच समुद्र का राजपक्षी वहाँ आ पहुँचा, जिसके डैनों का ऐसा घोर शब्द हुआ मानो पहाड़ के शिखर टूट रहे हों। वह पक्षी उस दुष्ट राक्षस को चंगुल में दबाकर उड़ गया। जहाज के एक तख्ते पर एक ओर राजा बहा और दूसरे तख्ते पर दूसरी ओर रानी।

पद्मावती का विलाप

पद्मावती बहते-बहते वहाँ जा लगी जहाँ समुद्र की कन्या लक्ष्मी अपनी सहेलियों के साथ खेल रही थी। लक्ष्मी मूर्छित पद्मावती को अपने घर ले गई। पद्मावती को जब चेत हुआ तब वह रत्नसेन के लिए विलाप करने लगी। लक्ष्मी ने उसे धीरज बँधाया और अपने पिता समुद्र से राजा की खोज कराने का वचन दिया। इधर राजा बहते-बहते एक ऐसे निर्जन स्थान में पहुँचा जहाँ मूँगों के टीलों के सिवा और कुछ न था। राजा पद्मिनी के लिए बहुत विलाप करने लगा और कटार लेकर अपने गले में मारना ही चाहता था कि ब्राह्मण का रूप धरकर समुद्र उसके सामने आ खड़ा हुआ और उसे मरने से रोका। अन्त में समुद्र ने राजा से कहा कि तुम मेरी लाठी पकड़कर आँख मूँद लो, मैं तुम्हें जहाँ पद्मावती है उसी तट पर पहुँचा दूँगा।

लक्ष्मी द्वारा रत्नसेन की परीक्षा

जब राजा उस तट पर पहुँच गया तब लक्ष्मी उसकी परीक्षा लेने के लिए पद्मावती का रूप धारण कर रास्ते में जा बैठीं। रत्नसेन उन्हें पद्मावती समझ उनकी ओर लपका। पास जाने पर वे कहने लगी- 'मैं पद्मावती हूँ।' पर रत्नसेन ने देखा कि यह पद्मावती नहीं है, तब चट मुँह फेर लिया। अन्त में लक्ष्मी रत्नसेन को पद्मावती के पास ले गईं। रत्नसेन और पद्मावती कई दिनों तक समुद्र और लक्ष्मी के मेहमान रहे। पद्मावती की प्रार्थना पर लक्ष्मी ने उन सब साथियों को भी ला खड़ा किया जो इधर-उधर बह गए थे। जो मर गए थे वे भी अमृत से जीवित किए गए। इस प्रकार बड़े आनन्द से दोनों वहाँ से विदा हुए। विदा होते समय समुद्र ने बहुत से अमूल्य रत्न दिए। सबसे बढ़कर पाँच पदार्थ दिए -

1. अमृत
2. हंस
3. राजपक्षी
4. शार्दूल और
5. पारस पत्थर।

इन सब अनमोल पदार्थों को लिए अन्त में रत्नसेन और पद्मावती चित्तौड़ पहुँच गए। नागमती और पद्मावती दोनों रानियों के साथ रत्नसेन सुखपूर्वक रहने लगे। नागमती से नागसेन और पद्मावती से कमलसेन ये दो पुत्र राजा को हुए।

राघव को देश से निकाला

चित्तौड़गढ़ की राजसभा में राघवचेतन नाम का एक पण्डित था जिसे यक्षिणी सिद्ध थी। एक दिन राजा ने पण्डितों से पूछा, 'दूज कब है?' राघव के मुँह से निकला 'आज'। और सब पण्डितों ने एक स्वर से कहा कि 'आज नहीं हो सकती, कल होगी।' राघव ने कहा 'कि यदि आज दूज न हो तो मैं पण्डित नहीं।' पण्डितों ने कहा कि 'राघव वाममार्गी है, यक्षिणी की पूजा करता है, जो चाहे सो कर दिखावे, पर आज दूज नहीं हो सकती।' राघव ने यक्षिणी के प्रभाव से उसी दिन संध्या के समय द्वितीया का चन्द्रमा दिखा दिया।' पर जब दूसरे दिन चन्द्रमा देखा गया तब वह द्वितीया का ही चन्द्रमा था। इस पर पण्डितों ने राजा रत्नसेन से कहा – 'देखिए, यदि कल द्वितीया रही होती, तो आज चन्द्रमा की कला कुछ अधिक होती, झूठ और सच की परख कर लीजिए।' राघव का भेद खुल गया और वह वेद विरुद्ध आचार करने वाला प्रमाणित हुआ। राजा रत्नसेन ने उसे देश निकाले का दण्ड दिया।

राघव का बदला

पद्मावती ने जब यह सुना तब उसने ऐसे गुणी पण्डित का असन्तुष्ट होकर जाना राज्य के लिए अच्छा नहीं समझा। उसने भारी दान देकर राघव को प्रसन्न करना चाहा। सूर्यग्रहण का दान देने के लिए उसने उसे बुलाया। जब राघव महल के नीचे आया तब पद्मावती ने अपने हाथ का एक अमूल्य कंगन, जिसका जोड़ा और कहीं दुष्प्राप्य था, झरोखे पर से फेंका। झरोखे पर पद्मावती की झलक देख राघव बेसुध होकर गिर पड़ा। जब उसे चेत हुआ तब उसने सोचा कि अब यह कंगन लेकर बादशाह के पास दिल्ली चलूँ और पद्मिनी के रूप का उसके

सामने वर्णन करूँ। वह लम्पट है, तुरन्त चित्तौड़ पर चढ़ाई करेगा और इसके जोड़ का दूसरा कंगन भी मुझे इनाम देगा। यदि ऐसा हुआ तो राजा से मैं बदला भी ले लूँगा और सुख से जीवन भी बिताऊँगा।

अलाउद्दीन द्वारा चढ़ाई और संधि

यह सोचकर राघव दिल्ली पहुँचा और वहाँ बादशाह अलाउद्दीन को कंगन दिखाकर उसने पद्मिनी के रूप का वर्णन किया। अलाउद्दीन ने बड़े आदर से उसे अपने यहाँ रखा और 'सरजा' नामक एक दूत के हाथ एक पत्र रत्नसेन के पास भेजा कि पद्मिनी को तुरन्त भेज दो, बदले में और जितना राज्य चाहो ले लो। पत्र पाते ही राजा रत्नसेन क्रोध से लाल हो गया और बिगड़कर दूत को वापस कर दिया। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ गढ़ पर चढ़ाई कर दी। आठ वर्ष तक मुसलमान चित्तौड़ को घेरे रहे और घोर युद्ध होता रहा, पर गढ़ न टूट सका। इसी बीच दिल्ली से एक पत्र अलाउद्दीन को मिला जिसमें हरेव लोगों के फिर से चढ़ आने का समाचार लिखा था। बादशाह ने जब यह देखा कि गढ़ नहीं टूटता है तब उसने कपट की एक चाल सोची। उसने रत्नसेन के पास सन्धि का एक प्रस्ताव भेजा और यह कहलाया कि मुझे पद्मिनी नहीं चाहिए, समुद्र से जो पाँच अमूल्य वस्तुएँ तुम्हें मिली हैं उन्हें देकर मेल कर लो।

नीतिज्ञों द्वारा विरोध

राजा ने स्वीकार कर लिया और बादशाह को चित्तौड़गढ़ के भीतर ले जाकर बड़ी धूमधाम से उसकी दावत की। गोरा बादल नामक विश्वासपात्र सरदारों ने राजा को बहुत समझाया कि मुसलमानों का विश्वास करना ठीक नहीं, पर राजा ने ध्यान न दिया। वे दोनों वीर नीतिज्ञ सरदार रूठकर अपने घर चले गए। कई दिनों तक बादशाह की मेहमानदारी होती रही। एक दिन वह टहलते-टहलते पद्मिनी के महल की ओर भी जा निकला, जहाँ एक से एक रूपवती स्त्रियाँ स्वागत के लिए खड़ी थीं। बादशाह ने राघव से, जो बराबर उसके साथ-साथ था, पूछा कि 'इनमें पद्मिनी कौन है?' राघव ने कहा, 'पद्मिनी इनमें कहाँ? ये तो उसकी दासियाँ हैं।' बादशाह पद्मिनी के महल के सामने ही एक स्थान पर बैठकर राजा के साथ शतरंज खेलने लगा। जहाँ वह बैठा था वहाँ उसने एक दर्पण भी रख दिया था कि पद्मिनी यदि झरोखे पर आवेगी तो उसका

प्रतिबिम्ब दर्पण में देखूँगा। पद्मिनी कुतूहलवश झरोखे के पास आई और बादशाह ने उसका प्रतिबिम्ब दर्पण में देखा। देखते ही वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

रत्नसेन को पकड़कर दिल्ली ले जाना

अन्त में बादशाह ने राजा से विदा माँगी। राजा उसे पहुँचाने के लिए साथ-साथ चला। एक एक फाटक पर बादशाह राजा को कुछ न कुछ देता चला। अन्तिम फाटक पार होते ही राघव के इशारे से बादशाह ने रत्नसेन को पकड़ लिया और बाँधकर दिल्ली ले गया। वहाँ राजा को तंग कोठरी में बन्द करके वह अनेक प्रकार के भयंकर कष्ट देने लगा। इधर चित्तौड़ में हाहाकार मच गया। दोनों रानियाँ रो रोकर प्राण देने लगीं। इस अवसर पर राजा रत्नसेन के शत्रु कुम्भलनेर के राजा देवपाल को दुष्टता सूझी। उसने कुमुदनी नाम की दूती को पद्मावती के पास भेजा। पहले तो पद्मिनी अपने मायके की स्त्री सुनकर बड़े प्रेम से मिली और उससे अपना दुःख कहने लगी, पर जब धीरे धीरे उसका भेद खुला तब उसने उचित दण्ड देकर उसे निकलवा दिया। इसके पीछे अलाउद्दीन ने भी जोगिन के वेश में एक दूती इस आशा से भेजी कि वह रत्नसेन से भेंट कराने के बहाने पद्मिनी को जोगिन बनाकर अपने साथ दिल्ली लाएगी। पर उसकी दाल भी न गली।

गोरा बादल

अन्त में पद्मिनी गोरा और बादल के घर गई और उन दोनों क्षत्रिय वीरों के सामने अपना दुःख रोकर उसने उनसे राजा को छुड़ाने की प्रार्थना की। दोनों ने राजा को छुड़ाने की दृढ़ प्रतिज्ञा की और रानी को बहुत धीरज बँधाया। दोनों ने सोचा कि जिस प्रकार मुसलमानों ने धोखा दिया है उसी प्रकार उनके साथ भी चाल चलनी चाहिए। उन्होंने सोलह सौ ढकी पालकियों के भीतर सशस्त्र राजपूत सरदारों को बिठाया और जो सबसे उत्तम और बहुमूल्य पालकी थी, उसके भीतर औजार के साथ एक लोहार को बिठाया। इस प्रकार वे यह प्रसिद्ध करके चले कि सोलह सौ दासियों के सहित पद्मिनी दिल्ली जा रही है।

गोरा बादल का रत्नसेन को छुड़ाना

गोरा के पुत्र बादल की अवस्था बहुत थोड़ी थी। जिस दिन दिल्ली जाना था उसी दिन उसका गौना आया था। उसकी नवागता वधू ने उसे युद्ध में जाने

से बहुत रोका पर उस वीर कुमार ने एक न सुनी। अन्त में सोलह सौ सवारियों के सहित वे दिल्ली के किले में पहुँचे। वहाँ कर्मचारियों को घूस देकर अपने अनुकूल किया, जिससे किसी ने पालकियों की तलाशी न ली। बादशाह के यहाँ खबर गई कि पद्मिनी आई है और कहती है कि राजा से मिल लूँ और उन्हें चित्तौड़ के खजाने की कुंजी सुपुर्द कर दूँ, तब महल में जाऊँ। बादशाह ने आज्ञा दे दी। वह सजी हुई पालकी वहाँ पहुँचाई गई जहाँ राजा रत्नसेन कैद था। पालकी में से निकलकर लोहार ने चट राजा की बेड़ी काट दी और वह शस्त्र लेकर एक घोड़े पर सवार हो गया जो पहले से तैयार था। देखते-देखते और हथियारबन्द सरदार भी पालकियों में से निकल पड़े। इस प्रकार गोरा और बादल राजा को छुड़ाकर चित्तौड़गढ़ चले।

रत्नसेन का बदला लेना और शहीद होना

बादशाह ने जब सुना तब अपनी सेना सहित पीछा किया। गोरा बादल ने जब शाही फौज पीछे देखी तब एक हजार सैनिकों को लेकर गोरा तो शाही फौज को रोकने के लिए डट गया और बादल राजा रत्नसेन को लेकर चित्तौड़ की ओर बढ़ा। वृद्ध वीर गोरा बड़ी वीरता से लड़कर और हजारों को मारकर अन्त में 'सरजा' के हाथ से मारा गया। इस बीच में राजा रत्नसेन चित्तौड़ पहुँच गया। पहुँचते ही उसी दिन रात को पद्मिनी के मुँह से रत्नसेन ने जब देवपाल की दुष्टता का हाल सुना तब उसने उसे बाँध लाने की प्रतिज्ञा की। सबेरा होते ही रत्नसेन ने कुम्भलनेर पर चढ़ाई कर दी। रत्नसेन और देवपाल के बीच द्वन्द्व युद्ध हुआ। देवपाल की साँग रत्नसेन की नाभि में घुसकर उस पार निकल गई। देवपाल साँग मारकर लौटना ही चाहता था कि रत्नसेन ने उसे जा पकड़ा और उसका सिर काटकर उसके हाथ-पैर बाँधें। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर और चित्तौड़गढ़ की रक्षा का भार 'बादल' को सौंप रत्नसेन ने शरीर छोड़ा।

रानियों का सती होना

राजा के शव को लेकर पद्मावती और नागमती दोनों रानियाँ सती हो गईं। इतने में शाही सेना चित्तौड़गढ़ आ पहुँची। बादशाह ने पद्मिनी के सती होने का समाचार सुना। बादल ने प्राण रहते गढ़ की रक्षा की पर अन्त में वह फाटक की लड़ाई में मारा गया और चित्तौड़गढ़ पर मुसलमानों का अधिकार हो गया।

पद्मावत की ऐतिहासिकता

पद्मावत की सम्पूर्ण आख्यायिका को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं –

पूर्वार्द्ध

रत्नसेन की सिंहलद्वीप यात्रा से लेकर चित्तौड़ लौटने तक हम कथा का पूर्वार्द्ध मान सकते हैं। पूर्वार्द्ध एक कल्पित कहानी है।

उत्तरार्द्ध

राघव के निकाले जाने से लेकर पद्मिनी के सती होने तक उत्तरार्द्ध। उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक आधार पर है।

टॉड के अनुसार – 'अलाउद्दीन ने संवत् 1346 में फिर चित्तौड़गढ़ पर चढ़ाई की। इसी दूसरी चढ़ाई में राणा अपने ग्यारह पुत्रों सहित मारे गए। जब राणा के ग्यारह पुत्र मारे जा चुके और स्वयं राणा के युद्धक्षेत्र में जाने की बारी आई तब पद्मिनी ने जौहर किया। कई सौ राजपूत ललनाओं के साथ पद्मिनी ने चित्तौड़गढ़ के उस गुप्त भूधारे में प्रवेश किया, जहाँ उन सती स्त्रियों को अपनी गोद में लेने के लिए आग दहक रही थी। इधर यह कांड समाप्त हुआ उधर वीर भीमसी ने रणक्षेत्र में शरीर त्याग किया।' टाड ने जो वृत्तान्त दिया है वह राजपूताने में रक्षित चारणों के इतिहासों के आधार पर है।

ठीक यही वृत्तान्त 'आइना ए अकबरी' में दिया हुआ है। 'आइना ए अकबरी' में भीमसी के स्थान पर रतनसी (रत्नसिंह या रत्नसेन) नाम है।

इन दोनों ऐतिहासिक वृत्तान्तों के साथ जायसी द्वारा वर्णित कथा का मिलान करने से कई बातों का पता चलता है। पहली बात तो यह है कि जायसी ने जो 'रत्नसेन' नाम दिया है यह उनका कल्पित नहीं है, क्योंकि प्रायः उनके समसामयिक या थोड़े ही पीछे के ग्रन्थ 'आइने अकबरी' में भी यही नाम आया था। यह नाम अवश्य इतिहासज्ञों में प्रसिद्ध था।

जायसी ने रत्नसेन का मुसलमानों के हाथ से मारा जाना न लिखकर जो देवपाल के साथ द्वन्द्वयुद्ध में कुम्भलनेरगढ़ के नीचे मारा जाना लिखा है उसका आधार शायद विश्वासघाती के साथ बादशाह से मिलने जाने वाला वह प्रवाद हो, जिसका उल्लेख आइने अकबरीकार ने किया है।

उत्तर भारत में प्रचलित कथा

अब 'पद्मावत' की पूर्वार्द्ध कथा जायसी द्वारा कल्पित है अथवा जायसी के पहले से कहानी के रूप में जनसाधारण के बीच प्रचलित चली आती है। उत्तर भारत में, विशेषत: अवध में, 'पद्मिनी रानी और हीरामन सूए' की कहानी अब तक प्राय: उसी रूप में कही जाती है जिस रूप में जायसी ने उसका वर्णन किया है।

जायसी इतिहासविज्ञ थे इससे उन्होंने रत्नसेन, अलाउद्दीन आदि नाम दिए हैं, पर कहानी कहने वाले नाम नहीं लेते हैं, केवल यही कहते हैं कि 'एक राजा था','दिल्ली का एक बादशाह था', इत्यादि। यह कहानी बीच बीच में गा गाकर कही जाती है। जैसे, राजा की पहली रानी जब दर्पण में अपना मुँह देखती है तब सूए से पूछती है–

देस देस तुम फिरौ हो सुअटा। मोरे रूप और कहु कोई।

सूआ उत्तर देता है–

काह बखानौं सिंहल के रानी। तोरे रूप भरै सब पानी।

अनुमान है कि जायसी ने प्रचलित कहानी को ही लेकर सूक्ष्म ब्योरों की मनोहर कल्पना करके, इसे काव्य का सुन्दर स्वरूप दिया है। इस मनोहर कहानी को कई लोगों ने काव्य के रूप में बाँधा।

हुसैन गजनवी ने 'किस्सा ए पद्मावत' नाम का एक फारसी काव्य लिखा।

सन् 1652 ई. में रायगोविंद मुंशी ने पद्मावती की कहानी फारसी गद्य में 'तुकफतुल कुलूब' के नाम से लिखी।

उसके बाद मीर जियाउद्दीन 'इब्रत' और गुलामअली 'इशरत' ने मिलकर सन् 1769 ई. में उर्दू शेरों में इस कहानी को लिखा।

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी पद्मावत सन् 1520 ई. में लिखी थी।

'पद्मावत' की प्रेमपद्धति

वासुदेव शरण अग्रवाल द्वारा पद्मावत की व्याख्या

'पद्मावत' एक प्रेम कहानी है। अब संक्षेप में यह देखना चाहिए कि कवियों में दाम्पत्य प्रेम का आविर्भाव वर्णन करने की जो प्रणालियाँ प्रचलित हैं, उनमें से 'पद्मावत' में वर्णित प्रेम किसके अन्तर्गत जाता है।

जायसी के शृंगार में मानसिक पक्ष प्रधान है, शारीरिक गौण है। चुम्बन, आलिंगन आदि का वर्णन कवि ने बहुत कम किया है, केवल मन के उल्लास और वेदना का कथन अधिक किया है। प्रयत्न नायक की ओर से है और उसकी कठिनता द्वारा कवि ने नायक के प्रेम को नापा है। नायक का यह आदर्श लैला मजनूं, शीरीं फरहाद आदि अरबी फारसी कहानियों के आदर्श से मिलता जुलता है।

भारतीय प्रेमपद्धति आदि में तो लोकसम्बद्ध और व्यवहारात्मक थी ही, पीछे भी अधिकतर वैसी ही रही। आदिकवि के काव्य में प्रेम लोकव्यवहार से कहीं अलग नहीं दिखाया गया है, जीवन के और विभागों के सौन्दर्य के बीच उसके सौन्दर्य की प्रभा फूटती दिखाई पड़ती है।

जायसी ने यद्यपि इश्क के दास्तानवाली मसनवियों के प्रेम के स्वरूप को प्रधान रखा है पर बीच बीच में भारत के लोक व्यवहार संलग्न स्वरूप का भी मेल किया है। इश्क की मसनवियों के समान 'पदमावत' लोकपक्षशून्य नहीं है। राजा जोगी होकर ाार से निकलता है, इतना कहकर कवि यह भी कहता है कि चलते समय उसकी माता और रानी दोनों उसे रो रोकर रोकती हैं। जैसे कवि ने राजा से संयोग होने पर पद्मावती के रसरंग का वर्णन किया वैसे ही सिंहलद्वीप से विदा होते समय परिजनों और सखियों से अलग होने का स्वाभाविक दु:ख भी। कवि ने जगह-जगह पद्मावती को जैसे चन्द्र, कमल इत्यादि के रूप में देखा है, वैसे ही उसे प्रथम समागम से डरते, सपत्नी से झगड़ते और प्रिय के हित के अनुकूल लोकव्यवहार करते भी देखा है।

राघवचेतन के निकाले जाने पर राजा और राज्य के अनिष्ट की आशंका से पद्मावती उस ब्राह्मण को अपना खास कंगन दान देकर सन्तुष्ट करना चाहती है। लोकव्यवहार के बीच भी अपनी आभा का प्रसार करने वाली प्रेमज्योति का महत्त्व कुछ कम नहीं।

जायसी ऐकान्तिक प्रेम की गूढ़ता और गम्भीरता के बीच में जीवन के और अंगों के साथ भी उस प्रेम के सम्पर्क का स्वरूप कुछ दिखाते गए हैं, इससे उनकी प्रेमगाथा पारिवारिक और सामाजिक जीवन से विच्छिन्न होने से बच गई है। पर है वह प्रेमगाथा ही, पूर्ण जीवनगाथा नहीं। ग्रन्थ का पूवार्द्ध-आधे से अधिक भाग-तो प्रेममार्ग के विवरण से ही भरा है। उत्तरार्ध में जीवन के और अंगों का सन्निवेश मिलता है पर वे पूर्णतया परिस्फुट नहीं हैं। मैं भावात्मक और व्यवहारात्मक दोनों शैलियों का मेल है।

दाम्पत्य प्रेम के अतिरिक्त मनुष्य की और वृत्तियाँ, जिनका कुछ विस्तार के साथ समावेश है, वे यात्रा, युद्ध, सपत्नीकलह, मातृस्नेह, स्वामिभक्ति, वीरता, छल और सतीत्व हैं। पर इनके होते हुए भी 'पद्मावत' को हम शृंगार रस प्रधान काव्य ही कह सकते हैं। 'रामचरित' के समान मनुष्य जीवन की भिन्न-भिन्न बहुत सी परिस्थितियों और सम्बन्धों का इसमें समन्वय नहीं है।

रूपलोभ और प्रेमलक्षण

राजा रत्नसेन तोते के मुँह से पद्मावती का अलौकिक रूपवर्णन सुन जिस भाव की प्रेरणा से निकल पड़ता है वह पहले रूपलोभ ही कहा जा सकता है। प्रेमलक्षण उसी समय दिखाई पड़ता है, जब वह शिवमन्दिर में पद्मावती की झलक देख बेसुध हो जाता है। इस प्रेम की पूर्णता उस समय स्फुट होती है जब पार्वती अप्सरा का रूप धारण करके उसके सामने आती हैं और वह उनके रूप की ओर ध्यान न देकर कहता है कि-

भलेहि रंग अछरी तोर राता। मोहि दुसरे सौं भाव न बाता।

उक्त कथन से रूपलोभ की व्यंजना नहीं होती, प्रेम की व्यंजना होती है।

जायसी के वर्णन में संयोग और वियोग दोनों का मिश्रण है। रत्नसेन का नाम तक सुनने के पहले वियोग की व्याकुलता कैसे हुई, इसका समाधान कवि के पास यदि कुछ है तो रत्नसेन के योग का अलक्ष्य प्रभाव-

पदमावति तेहि जोग सँजोगा। परी प्रेम बस गहे वियोगा।

नागमती का प्रेम

साधनात्मक रहस्यवाद में योग जिस प्रकार अज्ञात ईश्वर के प्रति होता है उसी प्रकार सूफियों का प्रेमयोग भी अज्ञात के प्रति होता है। पद्मावती के नवप्रस्फुटित प्रेम के साथ साथ नागमती का गार्हस्थ्य परिपुष्ट प्रेम भी अत्यन्त मनोहर है। पद्मावती प्रेमिका के रूप में अधिक लक्षित होती है, पर नागमती पतिप्राण हिन्दू पत्नी के मधुर रूप में ही हमारे सामने आती है। उसे पहले पहल हम रूपगर्विता और प्रेमगर्विता के रूप में देखते हैं। ये दोनों प्रकार के गर्व दाम्पत्य सुख के द्योतक हैं।

नागमती का वियोग

जायसी के भावुक हृदय ने स्वकीया के पुनीत प्रेम के सौन्दर्य को पहचाना। नागमती का वियोग हिन्दी साहित्य में विप्रलम्भ शृंगार का अत्यन्त उत्कृष्ट

निरूपण है। पुरुषों के बहुविवाह की प्रथा से उत्पन्न प्रेममार्ग की व्यावहारिक जटिलता को जिस दार्शनिक ढंग से कवि ने सुलझाया है वह ध्यान देने योग्य है। नागमती और पद्मावती को झगड़ते सुनकर दक्षिण नायक राजा रत्नसेन दोनों को समझाता है–

एक बार जेइ प्रिय मन बूझा। सो दुसरे सौं काहे क जूझा।
ऐस ज्ञान मन जान न कोई। कबहूँ राति, कबहूँ दिन होई।
धूप छाँह दूनौ एक रंगा। दूनों मिले रहहिं एक संगा।
जूझब छाँड़हु, बूझहु दोऊ। सेव करहु, सेवाफल होऊ।

ऊपर की चौपाइयों में पति पत्नी के पारस्परिक प्रेमसम्बन्धों की बात बचाकर सेव्य–सेवक भाव पर जोर दिया गया है। इसी प्रकार की युक्तियों से पुरानी रीतियों का समर्थन प्राय: किया जाता है। हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों में कई स्त्रियों से विवाह करने की रीति बराबर से है। अत: एक प्रेमगाथा के भीतर भी जायसी ने उसका सन्निवेश करके बड़े कौशल से उसके द्वारा मत सम्बन्धी विवाद शान्ति का उपदेश निकाला है।

शैली

जायसी ने इस महाकाव्य की रचना दोहा–चौपाइयों में की है। जायसी संस्कृत, अरबी एवं फारसी के ज्ञाता थे, फिर भी उन्होंने अपने ग्रंथ की रचना ठेठ अवधी भाषा में की। इसी भाषा एवं शैली का प्रयोग बाद में गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने ग्रंथरत्न 'रामचरित मानस' में किया। पद्मावत की भाषा अवधी है। चौपाई नामक छंद का प्रयोग इसमे मिलता है। इनकी प्रबंध कुशलता कमाल की है। जायसी के महत्व के सम्बन्ध में बाबू गुलाबराय लिखते है –

ष्जायसी महान् कवि है,उनमें कवि के समस्त सहज गुण विद्मान है। उन्होंने सामयिक समस्या के लिए प्रेम की पीर की देन दी। उस पीर को उन्होंने शक्तिशाली महाकाव्य के द्वारा उपस्थित किया। वे अमर कवि है।'

जायसी ने 'पद्मावत' के माध्यम से हिन्दू और मुसलमानों की पृथक् संस्कृतियों, धर्मों, मान्यताओं एवं परंपराओं के बीच समन्वय तथा प्रेम का निर्झर प्रवाहित किया। वैष्णवों के ईश्वरोन्मुख प्रेम एवं सूफियों के रहस्यवाद को जायसी ने मिला दिया है। 'पद्मावत' जायसी की काव्य–कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। हिन्दी के महाकाव्यों में तुलसीकृत 'रामचरित मानस' के बाद 'पद्मावत' की समकक्षता में कोई भी ग्रंथ नहीं ठहरता। साहित्यिक रहस्यवाद एवं दार्शनिक

सौन्दर्य से परिपुष्ट जायसी की यह कृति उनकी कीर्ति को अमर रखेगी, इसमें संदेह नहीं है। उनकी दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक 'अखरावट' है, जिसमें वर्णमाला के एक-एक अक्षर पर सूफी सिद्धांतों से संबंधित बातों का विवेचन है। 'आखिरी कलाम' में मृत्यु के बाद जीव की दशा तथा कयामत के अंतिम न्याय का वर्णन है।

निधन

रामचंद्र शुक्ल ने काजी नसीरूद्दीन हुसैन जायसी के आधार पर जायसी का मृत्यु-काल 949 हिजरी (1542 ई.) स्वीकार किया है। जायसी की मृत्यु अमेठी में हुई। अमेठी में जायसी की कब्र है, जहां हिन्दू-मुसलमान समान श्रद्धापूर्वक आते हैं। कवि के रूप में मलिक मुहम्मद जायसी की कीर्ति का एक ही महत्त्वपूर्ण आधार 'पद्मावत' है, जिसे कवि ने रक्त और प्रेम-जल से भिगोकर लिखा है।

4

आखिरी कलाम

आखिरी कलाम मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित ग्रंथ है। इसमें इस्लामी मान्यता के अनुसार प्रलय का वर्णन किया गया है। जायसी रचित इस महान् ग्रंथ का सर्वप्रथम प्रकाशन फारसी में हुआ था।

इस काव्य में जायसी ने 'मसनवी' शैली के अनुसार ईश्वर स्तुति की है।

इस ग्रंथ में ईश्वर के अवतार ग्रहण करने तथा भूकंप एवं सूर्य ग्रहण का भी उल्लेख किया गया है। इसके अलावा जायसी ने मुहम्मद की स्तुति, शाहतरत, बादशाह की प्रशस्ति और सैय्यद अशरफ की वंदना, जायस नगर का परिचय बड़ी सुंदरता के साथ किया है।

जैसा कि जायसी ने अपने काव्य 'अखरावट' में संसार की सृष्टि के विषय में लिखा था इस आखिरी काव्य में जायसी ने 'आखिरी कलाम' नाम के अनुसार संसार के समाप्त होने एवं पुनः सारे मानवों को जगाकर उसे अपना दर्शन कराने एवं जन्नत की भोग विलास के सुपुर्द करने का उल्लेख किया है।

पहिले नावँ दैउ करलीन्हा। जेंइ जिउ दीन्ह, बोल मुख कीन्हा।।
दीन्हेसि सिर जो सँवारै पागा। दीन्हेसि कया जो पहिरै बागा।।
दीन्हेसि नयन जोति, उजियारा। दीन्हेसि देखै कहँ संसारा।।
दीन्हेसि स्रवनबात जेहि सुनै। दीन्हेसि बुद्धि, ज्ञान बहु गुनै।।
दीन्हेसि नासिक लीजै बासा। दीन्हेसि सुमन सुगंधा बिरासा।।
दीन्हेसि जीभ बैन रस भाखै। दीन्हेसि भुगुति, साधा सब राखै।।

दीन्हेसि दसन, सुरग कपोला। दीन्हेसि अधार जे रचौं तँबोला।।
दीन्हेसि बदन सुरूप रँग, दीन्हेसि माथे भाग।
देखि दयाल, 'मुहम्मद', सीस नाइ पद लाग।1।
दीन्हेसि कंठ बोल जेहि माहाँ। दीन्हेसि भुजादंड, बल बाहाँ।।
दीन्हेसि हिया भोग जेहि जमा। दीन्हेसि पाँच भूत, आतमा।।
दीन्हेसि बदन सीत औ घामू। दीन्हेसि सुक्ख नींद बिसरामू।।
दीन्हेसि हाथ चाह जस कीजै। दीन्हेसि कर पल्लव गहि लीजै।।
दीन्हेसि रहस कूद बहुतेरा। दीन्हेसि हरष हिया बहु मेरा।।
दीन्हेसि बैठक आसन मारै। दीन्हेसि बूत जो उठें सँभारैं।।
दीन्हेसि सबै सँपूरन काया। दीन्हेसि होइ चलै कहँ पाया।।
दीन्हेसि नौ नौ फाटका, दीन्हेसि दसवँ दुवार।
सो अस दानि 'मुहम्मद' तिन्ह कै हौं बलिहार।2।
मरम नैन कर धारै बूझा। तेहि बिसरै संसार न सूझा।।
मरम स्रवन कर बहिरै जाना। जो न सुनै किछु दीजैं साना।।
मरम जीभ कर गूँगै पावा। साधा मरै, पैं निकर न नावाँ।।
(1) बागा=पहनावा, पोशाक। बिरासा=विलास। रचौं=रँग जाते हैं।
(2) रहस=आनंद। मेर=मेल, भाँति। फाटका=नव द्वार।
मरम बाँह कै लूलै चीन्हा। जेहि बिधि हाथन्ह पाँगुर कीन्हा।।
मरम कया कर कुस्टी भेंटा। नित चिरकुट जो रहे लपेटा।।
मरम बैठ उठ तेहिपै गुना। जो रे मिरिग कस्तूरी पहाँ।। (?)
मरम पाँव कै तेहि पै दीठा। होइ अपाय भुइँ चलै बईठा।।
अति सुख दीन्ह बिधातैं, औ सब सेवक ताहि।
प्रापन मरम 'मुहम्मद', अबहूँ समुझ कि नाहिं।3।
भा औतार मोर नौ सदी। तीस बरिस ऊपर कबि बदी।।
आवत उधात चार विधि ठाना। भा भूकंप जगत अकुलाना।।
धारती दीन्ह चक्रबिधि लाई। फिरै अकास रहँट कै नाई।।
गिरि पहार मेदिनि तस हाला। जस चाला चलनी भरि चाला।।
मिरित लोक ज्यों रचा हिंडोला। सरग पताल पवन खट डोला।।
गिरि पहार परबत ढहि गए। सात समुद्र कीच मिलि भए।।
धारती फाटि, छात भहरानी। पुनि भइ मया जौ सिष्टि समानी।।
जो अस खंभन्ह पाइ कै, सहस जीभ गहिराई।

सो अस कीन्ह 'मुहम्मद', तोहि अस बपुरे काइँ।4।
सूरुज (अस) सेवक ताकर अहै। आठौ पहर फिरत जो रहै।।
आयसु लिये रात दिन धावै। सरग पताल दुवौ फिरि आवै।।
दगधि आगि महँ होइ घंगारा। तेहि कै ऑच धिकै संसारा।।
सो अस बपुरै गहनै लीन्हा। औ धारि बाँधि चँडालै दीन्हा।।
गा अलोप होइ, भा अंधियारा। दीखै दिनहि सरग महँ तारा।
उवतै झप्पि लीन्ह धुप चाँपै। लाग सरब जिउ थर थर काँपै।
जिउ कहँ परे ज्ञान सब झूठै। तब होइ मोख गहन जौ छूटै।
ताकहँ एता तरासै, जो सेवक अस निंत।
अबहुँ न डरसि 'मुहम्मद' काह रहसि निहचिंत।5।
ताकै अस्तुति कीन्हि न जाई। कौने जीभ मैं करौं बड़ाई?।
जगत पताल जो सैंते कोई। लेखनी विरिख, समुद मसि होई।

(3) बिहरें=फूटने पर। सान दीजै=इशारा कीजिए (तो समझे) अवधा। चिरकुट=चीथड़ा बिबातै=बिधाता ने। (4) उधात चार= उत्पात। आवत... अकुलाना=जान पड़ता है, जिस दिन मलिक मुहम्मद पैदा हुए थे उस दिन भारी भूकंप आया था। भाइँ दीन्ह=फिराया। चाला=छलनी में डाला हुआ अनाज। पवन खट=पवन खटोला। खंभन्ह=अर्थात् पहाड़ों को (धरती पहाड़ों से कीली कही गई है)। गहिराइँ=गहराई या पाताल में थामे हैं। (5) धाकै=तपता है। औ धारि... चँडालै दीन्हा=प्रवाद है कि सूर्य चंद्र डोमों या चंडालों के ऋणी हैं, इसी से ग्रहण द्वारा बार-बार सताए जाते हैं। घुप=अंधकार।

लागै लिखै सिप्टि मिलि जाई। समुद घटै पै लिखि न सिराई।।
साँचा सोइ और सब झूठे। ठाँव न कतहुँ ओहि कै रूठे।।
आयसु इबलस हु जौ टारा। नारद होइ नरक महँ पारा।।
सौ दुइ कटक कहउ लखिधारा। फरऊँ रोधि नील महँ बोरा।।
जौ शदाद बैकुंठ सँवारा। पैठत पौरि बीच गहि मारा।।
जो ठाकुर अस दारुन, सेबक तइँ निरदोख।
माया करै 'मुहम्मद', तौ पै होइहि मोख।6।
रतन एक बिधानै अवतारा। नावँ मुहम्मद' जग उजियारा।।
चारि मीत चहुँ दिसि गजमोती। माँझ दिपै मनु मानिक जोती।।
जेहि हित सिरजा सात समुंदा। सातहु दीप भए एक बुंदा।।
तर पर चौदह भुवन उसारे। बिच बिच खंड बिखंड सँवारे।।

धारती औ गिरि मेरु पहारा। सरग चाँद सूरज औ तारा।।
सहस अठारह दुनिया सिरैं। आवत जात जातरा करैं।।
जेइ नहिं लीन्ह जनम महँ नाऊँ। तेहि कहँ कीन्ह नरक महँ ठाऊँ।
सो अस दैउ न राखा, जेहि कारन सब कीन्ह।
दहुँ तुम काह 'मुहम्मद' एहि पृथिवी चित दीन्ह।7।
बाबर साह छत्रपति राजा। राज पाट उन कहँ बिधि साजा।।
मुलुक सुलेमाँ कर ओहि दीन्हा। अदल दुनी ऊमर जस कीन्हा।।
अली केर जस कीन्हेसि खाँड़ा। लीन्हेसि जगत समुद भरि डाँड़ा।।
बल हमजा करजैस सँभारा। जो बरियार उठा तेहि मारा।।
पहलवान नाए सब आदी। रहा न कतहुँ बाद करि बादी।।
बड़ परताप आप तप साधो। धारम के पंथ दई चित बाँधो।।
दरब जोरि सब काहुहिदिए। आपुन बिरह आउ जस लिए।।
राजा होइ करै सब, छाँड़ि जगत महँ राज।
तब अस कहै 'मुहम्मद', वँ कीन्हा किछु काज।8।

(6) सैंते=इकट्ठी करे। सिराई=चुके, पूरा हो। इबलीस=फरिश्ता जो पीछे शैतान हुआ। फरऊँ=मिस्र का बादशाह जिसने इसराइल के वंशवालों को सताया था। शदाद=शद्दाद, एक प्रतापी बादशाह जिसने खुदाई का दावा किया था और बिहिश्त के नमूने पर 'अरम' नाम का बाग बनवाया था। यह बाग हजरमूत में बारह कोस लँबा था। इसमें अनेक प्रकार के सुंदर अनुपम वृक्ष और भवन थे। इसके तैयार हो जाने पर ज्यों ही वह इसके भीतर घुसना चाहता था कि ईश्वर के कोप से दरवाजे पर ही उसके प्राण निकल गए। सेवक तईं=अपने बंदों या भक्तों के लिए। निरदोख=अच्छे स्वभाव का, सुशील। (7) तर पर=नीचे-ऊपर। उसारे=खड़े किए, स्थापित किए। (8) ऊमर=खलीफा उमर। पहलवान=योद्धा वीर। नाए=झुकाए। आदी=पूरे, बिलकुल। आउ जस= आयु की कीर्ति।

मानिक एक पायउँ उजियारा। सैयद असरफ पीर पियारा।।
जहाँगीर चिस्ती निरमरा। कुल जग महँ दीपक विधि धारा।।
औ निहंग दरिया जल माहाँ। बड़त कहँ धारि काढ़त वाहाँ।।
समुद माहँ जोबाहति फिरई। लेतै नावँ सौंहँ होइ तरई।।
तिन्ह घर हौं मुरीद, सो पीरू। सँवरत बिनु गुन लावैं तीरू।।
कर गहि धारम पंथ देखरावा। गा भुलाइ नहिं मारग लावा।।
जो अस पुरुषहि मन चित लावै। इच्छा पूजै, आस तुलावै।।

जो चालिस दिन सेवै, बार बुहारै कोइ।
दरसन होइ 'मुहम्मद', पाप जाइ सब धोइ।9।
जायस नगर मोर अस्थानू। नगर क नाँव आदि उदयानू।।
तहाँ दिवस दस पहुने आयउँ। भा बैराग बहुत सुख पायउँ।।
सुखभा सोचि एक दुख मानौं। ओहि बिनु जिवन मरन कै जानौं।
नैन रूप सो गयउ समाई। रहा पूरि भर हिरदय छाई।।
जहँवैं देखैं तहँवैं सोई। और न आव दिस्टि तर कोई।।
आपुन देखि देखिमन राखौं। दूसर नाहिं सो कासौं भाखों।।
सबैं जगत दरपन कै लेखा। आपन दरसन आपुहि देखा।।
अपने कौकुत कारन, मीर पसारिन हाट।
मलिक मुहम्मद बिहनै, होइ निकसिन तेहि वाट।10।
धूत एक मारत गनि गुना। कपट रूप नारद करि चुना।।
'नावँ न साधु' साधि कहवावै। तेहि लगि चलै जौ गारी पावै।।
भावगाँठि अस मुख, कर भाँजा। कारिख तेल घालि मुख माँजा।।
परतहि दीठि छरत मोहिं लेखे। दिनहिं माँझ अंधियर मुख देखै।।
लीन्हें चंग रात दिन रहई। परपँच कीन्ह लोगन मह चहई।।
भाइ बंधु महँ लाई लावैं। बाप पूत महँ कहै कहावैं।।
मेहरि भेस रैनि के आवै। तरपड़ कै पूरुख ओनवावै।।
मन मैली कै ठगि, ठगै, ठगे न पायो पायौ काहु।
बरजेउ सबहिं 'मुहमद', अस जिस तुम पतियाहु।11।

(9) निहँग=बिलकुल। बार=द्वारा। (10) उदयानू='जायस' का यही पुराना नाम वहाँ के लोग बतलाते हैं। कौकुत=कौतुक (अवधा) मीर=सरदार, यहाँ परमेश्वर। बिहनै=सवेरे सवेरे, प्रातःकाल ही (11) धूत=धूर्त। नारद=शैतान। नावँ न साधु=ईश्वर का नाम न जप। भाव गाँठि...भाँजा=मुँह पर ऐसा हावभाव बनाकर हाथ से ऐसे ऐसे इशारे करती है। कारिख=काजल, मिस्सी, तेल आदि स्त्रियों का शृंगार। अंधियर=अंधेरा। लाई लावै=झगड़ा लगाती है। मेहरी=स्त्री, जोरू। तरपड़=नीचे। ओनवावै=झुकाती हैं। कै ठगि=ठगी करके।

अंग चढ़ावहु सूरी भारा। जाइ गहौ तब चंग अधारा।।
जौ काहू सौं आनि चिहूँटै। सुनहु मोर बिधि कैसे छूटै।।
उहै नावँ करता कर लेऊ। पढ़ौ पलीता धूआँ देऊ।।
जौ यह धूआँ नासिकहि लागै। मिनती करै औ उठि उठि भागै।।

धारि बाई लट सीस झकौरे। करि पाँ तर, गहि हाथ मरोरे।।
तबहिसँकोच अधिक ओहि होवै। 'छाँड़हु छाँड़हु!' कहि कै रोवै।।
घरि बाहीं लै थुवा उड़ावै। तासौं डरै जो ऐस छोड़ावै।।
है नरकी औ पापी, टेढ़ बदन औ आँखि।।
चीन्हत अहै 'मुहम्मद', भूठ भरी सब साखि।12।
नौ सै बरस छतीस जो भए। तब एहि कथा क आखर कहे।।
देखौं जगत धुंधा कलिमाहाँ। उवत धूप धारि आवत छाहाँ।।
यह संसार सपन कर लेखा। माँगत बदन नैन भरि देखा।।
लाभ, दिए बिनु भोग न पाउब। परिहि डाँढ़ जहँ मूर गवाउब।।
राति क सपन जागि पछिताना। ना जानौं कब होइ बिहाना।।
अस मन जानि बेसाहहु सोई। मूर न घटै लाभ जेहि होई।।
ना जानेहु बाढ़त दिन जाई। तिल तिल घटै आउ नियराई।।
अस जिन जानेहु बढ़त है, दिन आवत नियरात।
कहै सो बूझि 'मुहम्मद', फिर न कहौं असि बात।13।
जबहि अंत कर परलै आई। धारमी लोग रहै ना पाई।।
जबही सिद्ध साधु गए पारा। तबहीं चलै चोर बटपारा।।
जाइहि मया मोह सब केरा। मच्छ रूप कै आइहि बेरा।।
उठिहैं पंडित बेद पुराना। दत्ता सत्ता दोउ करिहिं पयाना।।
धूम बरन सूरुज होइ जाई। कृस्न बरन सब सिष्टि दिखाई।।
दधा पुरुब दिसिउइहै जहाँ। पुनि फिरि आइ अथइहै तहाँ।।
चढ़ि गदहा निकसैंधारि जालू। हाथ खंड होइ, आवै कालू।।
जो रे मिलै तेहि मारै, फिरि किरि आइ कै गाज।
सबही मारि 'मुहम्मद', भूज अरहिता राज।14।
पुनि धारती कहँ आयसु होई। उगिलै दरब, लेइ सब कोई।।
'मोर मौर' करि उठिहैं झारी। आपु आपु महँ करिहैं मारी।।

(12) भारा=भाला। बिहूँटै=चिमटे, लगे। लेऊ=ले। देऊ=दे (अवधी) थुवा उड़ावै=थू-थू करैय थूके। साखि=विश्वास दिलाकर कहे हुए वचन। (13) माँगत...देखा=सबको मुँह से माँगते ही देखा। (14) आई=आइहि, आएगा। मच्छ रूप...बेरा=जैसे बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को पकड़कर खा जाती हैं, वैसा ही व्यवहार मनुष्यों के बीच हो जायगा। दत्ता सत्ता=दान और सत्य। दधा=जला हुआ। खंड=खाँड़ा। भूज=भोगेगा। अरहिता=निर्जन, निष्कंटक।

अस न कोइ जानै मन माहाँ। जो यह सँचा अहै सो कहाँ।।
सँति सैंति लेइ लेइ घर भरहीं। रहस कूद अपने जिउ करहीं।।
खनहिं उतंग, खनहि फिर साँती। नितहि हुलंब उठै बहु भाँती।।
पुनि एक अचरज सँचरै आई। नावँ 'मजारी' भँबै बिलाई।।
ओहि के सूँघे जियै न कोई। जो न मरै तेहि भक्खे सोई।।
सब संसार फिराइ औ, लावै गाहिरी घात।
उनहूँ कहैं 'मुहम्मद', बार न लागिहि जात।15।
पुनि मैकाइल आयसु पाए। उन बहु भाँति मेघ बरसाए।।
पहिले लागै परै गारा। धरती सरग होइ उजियारा।।
लागी सबै पिरथिवीं जरै। पाछे लागे पाथर परै।।
सौ सौ मन कै एक एक सिला। चलै पिंड घुटि आवैं मिला।।
बजर गोट तस छूटै भारी। टूटैं रूख बिरुख सब झारी।।
परत धामाकि धारति सब हालै। उधारत उठै सरग लौं सालै।।
अधाधार बरसै बहु भाँती। लागि रहै चालिस दिन राती।।
जिया जंतु सब मरि घटे, जित सिरजा संसार।
कोइ न रहै 'मुहम्मद', होइ बीता संघार।16।
जिबरईल पाउब फरमानू। आइ सिस्टि देखब मैदानू।।
जियत न रहा जगत केउ ठाढ़ा। मारा झोरि कचरि सब गाढ़ा।।
मरि गंधाहिं, साँस नहिं आवै। उठै बिगंधा सड़ाइँधा आवै।।
जाइ दैउ से करहु बिनाती। कहब जाइ जस देखब भाँती।।
देखहु जाइ सिस्टि बेवहारू। जगत उजाड़ सून संसारू।।
अस्ट दिसा उजारि सब मारा। कोइ न रहा नावँ लेनिहारा।।
मारि माछ जस पिरथिवीं पाटी। परे पिछानि न दीखै माटी।।
सून पिरथिवीं होइ गई, दहुँ धारती सब लीप।।
जेतनी सिस्टि 'मुहम्मद', सवै भाइ जल दीप।17।
मकाईल पुनि कहब बुलाई। बरसहु मेघ पिरथिवीं जाई।।
उनै मेघ भरि उठिहैं पानी। गरजि गरजि बरसहि अतवानी।।

(15) झारी=सब के सब बिलकुल। सँचा=संचित किया, जुटाया। सैंति=समेटकर, सहेजकर। उतंग=उभार, जोर शोर। साँती=शांति। हुलंब=हुल्लड़, हल्ला, हलचल। भँवैं=फिरती है। बिलाई=बिल्ली। फिराई=फिरते हैं। उनहूँ कहैं=उनको भी। (16) मैकाइल= मकाईल नामक फरिश्ता। घुटि=जमकर।

गोट=गोले। उधिरत उठै=उबड़ती या उचटती जाती है। (17) जिबरईल=एक फरिश्ता। केउ=कोई (अवधी)। बिगंधा=दुर्गंधा। भाइ= भासित होती है, जान पड़ती है। जल दीप=नदी या समुद्र के बीच पड़ा सुनसान टापू।

झरी लागिचालिस दिन राती। घरी न निबुसै एकहु भाँती।।
छूटि पानि परलय कीनाई। चढ़ा छापि सगरिउँ दुनियाई।।
बूड़हिं परबत मेरु पहारा। जल हुलि उमड़ि चलै असरारा।।
जहँ लगि मगर माछ जित होई। लेइ बहाइ जाइहि भुइँ धोई।।
पुनि घटि नीर भँडारै आई। जनौं न बरसा तैस सुखाई।।
सून पिरथिवीं होइहि, बूझे हँसे ठठाइ।
एतनि जो सिस्टि 'मुहम्मद', सो कहँ गई हेराइ।18।
पुनि इसराफीलहिं फरमाए। फूँके, सब संसार उड़ाए।
दै मुख सूर भरै जोसाँसा। डोलै धारती, लपत अकासा।।
भुवन चौदहो गिरि मनु डोला। जानौ घालि झुलाव हिंडोला।।
पहिले एक फूँक जो आई। ऊँच नीच एक सम होइ जाई।।
नदी नार सब जैहैं पाटी। अस होइ मिले ज्यों ठाढ़ी माटी।।
दूसरि फूँक जो मेरु उड़ैहैं। परबत समुद एक होइ जैहैं।।
चाँद सुरुज तारा घट टूटै। परतहि खंभ सेस घट फूटै।।
तिसरे बजर महाउब, अस भुइँ लेब महाइ।
पूरब पछिउँ 'मुहम्मद', एक रूप होइ जाइ।19।
अजराइल कहँ बेगि बोलावै। जाउ जहाँ लगि सबै लियावै।।
पहिले जिउ जिबरैल क लेई। लोटि जीउ मैकाइल देई।।
पुनि जिउ देइहि इसराफीलू। तीनिहु कहँ मारै अजराईलू।।
काल फिरिस्तन केर जो होई। कोइ न जागै, निसि असि होई।।
पुनि पूछब जम? सब जिउ लीन्हा। एकौ रहा बाँचि जो दीन्हा?।।
सुनिअजराइल आगे होइ आउब। उत्तार देब, सीस भुइँ नाउब।।
आयसु होइ करौं अब सोई। की हम, की तुम, और न कोई।।
जो जम आन जिउ लेत हैं, संकर तिनहू कर जिउ लेब।
सो अवतरें 'मुहम्मद', देखु तहूँ जिउ देब।20।
पुनि फरमाए आपु गोसाईं। तुमहूँ दैउ जिवाइहि नाहीं।।
सुनि आयसु पाछे कहँढाए। तिसरी पौरि नाँधि नहिं पाए।।
परत जीउ जब निसरन लागै। होइ बड़ कष्ट, घरी एक जागै।।

(18) मकाईल=एक फरिश्ता। अतबानी=(?)। निबुसै=(मेह) थमता है, निकलता है। हुलि=ठिलकर। असरारा=लगातार। (19) इसराफील=एक फरिश्ता। सूर=तुरही बाजा (अरबी)। लपत=लचता है। खंभ=स्तंभ रूप पर्वत। बजर=वज्र। महाउब=मथाएगा। (20) अजराईल=मारनेवाला फरिश्ता। पुनि पूछब=खुदा फिर पूछेगा। बाँचि जो दीन्हा=जिसको बचा दिया। की हम की तुम=अब तो बस हम हैं, या तुम हो। जम=यमराज जो पैगंबरी मजहबों में अजराईल कहलाता है। संकर=शंकर, शिव जो महाकाल हैं। तहूँ=तू भी।

प्रान देत सँवरै मन माहाँ। उवत धूप धारि आवत छाहाँ।।
जस जिउ देत मोहिं दुख होई। ऐसे दुखै अहा सब कोई।।
जो जनत्यौं अस दुख जिउदेता। तौ जिउ काहू केर न लेता।।
लौटि काल तिनहूँ कर हौवे। आइ नींद निधारक होइ सोवै।।
भँजन, गढ़न सँवारन, जिन खेला सब खेल।
सब कहँ टारि 'मुहम्मद', अब होइ रहा अकेल।21।
चालिस बरस जबहिं होइ जैहैं। उठिहि मया, पछिले सब ऐहैं।।
मया मोह कै किरपा आए। आपहि काहिं आप फरमाए।।
मैं संसार जो सिरजा एता। मोर नाँव कोई नहिं लेता।।
जेतने परे सब सबहि उठावौं। पुल सरात कर पंथ रेंगावौं।।
पाछे जिए पूछौं अबलेखा। नैन माहँ जैता हौं देखा।।
जस जाकर सरवन मैं सुना। धारम पाप, गुन औगुन गुना।।
कै निरमल कौसर अन्हवावौं। पुनि जीउन्ह बैकुंठ पठावौं।।
मरन गँजन घन होइ जस, जस दुख देखत लोग।
तस सुख होइ 'मुहम्मद', दिन दिन मानैं भोग।22।
पहिले सेवक चारि जियाउब। तिन्ह सब काजै काज पठाउब।।
जिबराईल औ मैकाईलू। असराफील औ अजराईलू।।
जिबरईल पिरथिवीं महँ आए। आइ मुहम्मद कहँ गोहराए।।
जिबरईल जग आइ पुकराब। नावँ मुहम्मद लेत हँकारब।।
होइहैं जहाँ मुहम्मद नाऊँ। कइउ लाख बोलिहैं एक ठाऊँ।।
ढूँढ़त रहै, कहहुँ नहिं पावै। फिरि कै जाइ मारि गोहरावै।।
कहै 'गोसाइँ! कहाँ वै पावौं। लाखन बोलै जौ रे बोलावौं।।
सब धारती फिरि आयउँ, जहाँ नावँ सो लेउँ।
लाखन उठैं मुहम्मद, केहि कहँ उत्तार देउँ?'।23।

जिबराइल पुनि आयसु पावै। सूँघे जगत ठाँव सो पावै।।
बास सुबास लेउ हैं जहाँ। नावँ रसूल पुकारसि तहाँ।।
जिबराइल फिरि पिरथिवीं आए। सूँघत जगत ठाँव सो पाए।।

(21) ढाए=ढह पड़े, गिर पड़े। उवत धूप...छाहाँ=अंत समय में जब ज्ञान होता है तब मृत्यु को अंधाकार घेर लेता है। (22) पुल सरात=वह पुल जिसे कयामत के दिन सब जीवों को पार करना पड़ेगा और जो पुण्यात्माओं के लिए खासा चौड़ा और पापियों के लिए बाल बराबर पतला हो जाएगा। कौसर=बिहिश्त (स्वर्ग) की एक नदी या चश्मा। गँजन=गंजन, पीड़ा, क्लेश। (23) काजै काज=एक- एक काम पर। गोहराए=पुकारा। मारि गोहरावै=बहुत पुकारता है।

उठहु मुहम्मद होहु बड़ नेगी। देन जोहार बोलावहिं बेगी।।
बेगि हँकारेउ उमत समेता। आवहु तुरत साथ सब लेता।।
एतने बचन ज्योंहि मुख काढ़े। सुनत रसूल भए उठि ठाढ़े।।
जहँ लगि जीव मुकहि सब पाए। अपने अपने पिंजरे आए।।
कहइ जुगन के सोवत, उठे लोग मनो जागि।
अस सब कहैं 'मुहम्मद', नैन पलक ना लागि।24।
उठत उमत कहँ आलस लागैं। नींद भरी सोवत नहिं जागै।।
पौढ़त बार न हम कहँ भयऊ। अबहिंन अवधि आइ कब गयऊ।।
जिबराइल तब कहब पुकारी। अबहूँ नींद न गई तुम्हारी।।
सोवत तुमहिं कइउ जुग बीते। ऐसे तौ तुम मोहे, न चीते।।
कइउ करोरि बरस भुइँ परे। उठहु न बेगि मुहम्मद खरे।।
सुनि कै जगत उठिहि सब झारी। जेतना सिरजा पुरुष औ नारी।।
नँगा नाँग उठिहै संसारू। नैना होइहैं सबके तारू।।
कोइ न केहु तन हेरै, दिस्टि सरग सब केरि।
ऐसे जतन 'मुहम्मद', सिस्टि चलै सब घेरि।25।
पुनि रसूल जैहैं होइ आगे। उम्मत चलि सब पाछे लागै।।
अंधा गियान होइ सब केरा। ऊँच नीच जहँ होइ अभेरा।।
सबही जियत चहैं संसारा। नैनन नीर चलै असरारा।।
सो दिन सँवरि उमत सब रोवै। भा जानौं आगे कस होवै।।
जो न रहै, तेहि का यह संगा ? मुख सूखै तेहि पर यह दंगा।।
जेहि दिन कहँ नित करत डरावा। सोइ दिवस अब आगे आवा।।
जो पै हमसे लेखा लेबा। का हम कहब उतर का देबा।।

एत सब सँवरि कै मन महँ, चहैं जाइ सो भूलि।
पैगहि पैग 'मुहम्मद', चित्ता रहै सब झूलि।26।
पुल सरात पुनि होइ अभेरा। लेखा लेब उमत सब केरा।।
एक दिन बैठि मुहम्मद रोइहैं। जिबरईल दूसर दिसि होइहैं।।
वार पार किछु सूझतनाहीं। दूसर नाहिं को टेकै बाहीं?।।
तीस सहस्र कोस कैबाटा। अस साँकर जेहि चलै न चाँटा।।
बारहु तें पतरा अस झीना। खड़ग धार से अधिकौ पैना।।

(24) नेगी=प्रसाद या इनाम पानेवाले। जुहार देन=बंदगी के लिए। उमत=उम्मत, पैगंबर के अनुयायियों का समूह। मुकहि पाए=कब्रों से छूट पाए। पिंजरे अर्थात् शरीर (25) पौढ़त=लेटते या सोते। बार=देर। अबहिंन=अभी ही, इतनी जल्दी। खरे=खड़े। तारू=तालु में। केहु तन=किसी की ओर। ऐसेजतन=इस ढंग से, इस प्रकार। (26) असरारा=लगातार। चित्ता झूलि रहै=मन में बार-बार आया करता है।

दोउ दिसि नरक कुंड हैंभरे। खोज न पाउब तिन्ह महँ परे।।
देखत काँपै लागै जाँघा। सो पथ कैसे जैहै नाँघा।।
तहाँ चलत सब परखब, को रे पूर, को ऊन।
अबहिं को जान 'मुहम्मद', भरे पाप औ पून।27।
जौ धारमी होइहि संसारा। चमकि बीजु अस जाइहि पारा।।
बहुतक जनौंतुरँग भल धाइहैं। बहुतक जानु पखेरु उड़इहैं।।
बहुतक चाल चलै महँ जइहैं। बहुतक मरि मरि पाँव उठइहैं।।
बहुतक जानु पखेरु उड़इहैं। पवन कै नाई तेहि महँ जइहैं।।
बहुतक जानौं रेंगहिं चाँटी। बहुतक बहैं दाँत धारि माटी।।
बहुतक नरक कुंड महँ गिरहीं। बहुतक रकत पीब महँ परही।।
जेहि केजाँघ भरोस न होई। सो पंथी निभरोसी रोई।।
परै तरास सो नाँघत, कोइ रे बार, कोइ पार।
कोइ तिर रहा 'मुहम्मद', कोई बूड़ा मझधार।28।
लौटि हँकारब वह तब भानू। तपै कहैं होइहि फरमानू।।
पूछब कटक जेता है आवा। को सेवक, को बैठे खावा?।।
जेहि जस आउ जियन मैं दीन्हा। तेहि तस संबर चाहौं लीन्हा।।
जब लगि राज देस कर भूजा। अब दिन आइ लेखा कर पूजा।।
छह मास कर दिन करौं आजू। आउ क लेउँ औ देखौं साजू।।

से चौराहै बैठे आवै। एक एक जन कँ पूछि पकरावै।।
नीर खीर हुँत काढ़ब छानी। करब निनार दूधा औ पानी।।
धारम पाप फरियाउब, गुन औगुन सब दोख।
दुखी न होहु 'मुहम्मद', जोखि लेब धारि जोख।29।
पुनि कस होइहि दिवस छ मासू। सूरुज आइ तपहिं होइ पासू।।
कै सउहैं नियरे रथ हाँकै। तेहिकै आँच गूद सिर पाकै।
बजरागिन अस लागै तैसे। बिलखैं लोग पियासन वैसे।।
उनै अगिन अस बरसै घामू। भूँज देह, जरि जावै चामू।।
जेइ किछु धारम कीन्ह जग माहाँ। तेहि सिर पर किछु आवै छाहाँ।।
धारमिहि आनि पियाउब पानी। पापी बपुरहि छाँह न पानी।।
जो राजता सो काज न आवै। इहाँ क दीन्ह उहाँ सो पावै।।

(27) अभेरा=सामना। चाँटा=चींटी। खोज=पता, निशान। ऊन=त्रुटिपूर्ण, ओछा। (28) बीजु=बिजली। चाल चलै महँ=मनुष्य की साधारण चाल से। तरास=त्रस। (29) तपै कहैं=तपने को (अवध)। संबर=सामान, कमाई। भूजा=भोग किया। से=वहय सूर्य। एक-एक...पकरावै=एक-एक प्राणी से सवाल-जवाब करके उसे पकड़ाए। कँ=कहँ, को। जोख-तराजू।

जो लखपती कहावै, लहै न कौड़ी आधि।
चौदह धाजा 'मुहम्मद', ठाढ़ करहिं सब बाँधि।30।
सवा लाख पैगंबर जेते। अपने अपने पाएँ तेते।।
एक रसूल न बैठहिं छाहाँ। सबही धूप लेहिं सिर माहाँ।।
घामै दुखी उमत जेहिकेरी। सो का मानै सुख अवसेरी?।।
दुखी उमत तौपुनि मैं दुखी। तेहि सुख होइ तौ पुनि मैं सुखी।।
पुनि करता कै आयसुहोई। उमत हँकारु लेखा मोहिं देई।।
कहब रसूल कि आयसु पावौं। पहिले सब धारमी लै आवौं।।
होइ उतर तिन्ह हौं ना चाहौं। पापी घालि नरक महँ बाहौं।।
पाप पुन्नि कँ तखरी, होइ चाहत है पोच।
अस मन जानि 'मुहम्मद', हिरदै मानेउ सोच।31।
पुनि जैहैं आदम के पासा। पिता! तुम्हारि बहुत मोहिं आसा।।
उमत मोरि गाढ़े है परी। भा न दान, लेखा का धारी?।।
दुखिया पूत होत जो अहै। सब दुख पै बापै सौं कहै।।
बाप बाप कै जो कछु खाँगै। तुमहिं छाँड़ि कासौं पुनि माँगै?।।

तुम जठेरपुनि सबहिन्ह केरा। अहै सँतति, मुख तुम्हरै हेरा।।
जेठ जठेर जो करिहैं मिनती। ठाकुर तबहीं सुनिहैं मिनती।।
जाइ दैउ सौं बिनवौं रोई। मुख दयाल दाहिन तोहि होई।।
कहहु जाइ जस देखेउ, जेहि होवै उदघाट।
बहु दुख दुखी 'मुहम्मद', बिधि! संकट तेहि काट।32।
सुनहु पूत, आपन दुख कहऊँ। हौं अपने दुख बाउर रहऊँ।।
होइ बैकुंठ जो जायसु ठेलेउँ। दूत के कहे मुख गोहूँ मेलेउँ।।
दुखिया पेट लागि सँगधावा। काढ़ि बिहिस्त से मैल ओढ़ावा।।
परलै जाइ मँडल संसारा। नैन न सूझै, निसि अंधियारा।।
सकल जगत मैं फिरि फिरि रोवा। जीउ अजान बाँधि कै खोवा।।
भएँ उजियार पिरथिवीं जइहौं। औ गोसाइँ कै अस्तुति कहिहौं।।
लौटि मिलै जौ हौवा आई। तो जिउ कहँ धीरज होइ जाई।।
तेहि हुँत लाजि उठै जिउ, मुँह न सकौं दरसाइ।
सो मुँह लेइ 'मुहम्मद'! बात कहौं का जाइ?।33।

(30) सउहैं=सामने। गूद सिर पाकै=खोपड़ी का गूदा पक जाता है। बैसे=बैठे। बपुरहि=बेचारे को। राजता=राजत्व, राजापन। चौदह धाजा=चौदह धाज्जियों या बंधानों से। (31) पाएँ=पाए या आसनपर। अवसेरी=दुःख से व्यग्र, चिंताग्रस्त। बाहौं=फेंकूँ, डालूँ। तखरी=तकड़ी, तराजू (पंजाबी)। (32)गाढ़े=संकट में। धारी=धारिहि, धारेगी (अवधा)। खाँगै=घटता है। जठेर=जेठा, बड़ा, बुजुर्ग। उदघाट=छुटकारा, उद्धार। (33) बाउर=बाबला। मैल ओढ़ावा=कलंक लगा दिया। भएँ=होने पर। तेहि हुँत=उसी से, उसी कारण।

पुनि जैहैं मूसा क दोहाई। ऐ बंधू! मोहिं उपकरु आई।।
तुम कहँ बिधिना आयसु दीन्हा। तुम नेरे होइ बातैं कीन्हा।।
उम्मत मोरि बहुत दुखदेखा। भा न दान, माँगत है लेखा।।
अब जौ भाइ मोर तुम अहौ। एक बात मोहिं कारन कहौ।।
तुम अस ठटै बात का कोई। सोई कहौ बात जेहि होई।।
गाढ़े मीत! कहौं का काहू?। कहहु जाइ जेहि होइ निबाहू।।
तुम सँवारि कै जानहु बाता। मकु सुनि माया करै बिधाता।।
मिनती करहु मोर हुँत, सीस नाइ कर जोरि।
हा हा करै 'मुहम्मद', उमत दुखी है मोरि।34।
सुनहु रसूल बात का कहौं। हौं अपने दुख बाउर रहौं।।

कै कै देखेउ बहुत ढिठाई। मुँह गरुवाना खात मिठाई।।
पहले मो कहँ आयसु दीन्हा। फरऊँ से मैं झगरा कीन्हा।।
रोधि नील कै डारेसि झुरा। फुर भा झूठ झूठ भा फुरा।।
पुनि देखे बैकुंठ पठायउँ। एकौ दिसि कर पंथ न पायउँ।।
पुनि जो मो कहँ दरसन भयऊ। कोह तूर रावट होइ गयऊ।।
भाँति अनेक मैं फिर फिर जापा। हर दावँन कै लीन्हेसि झाँपा।।
निरखि नैन मैं देखौं, कतहुँ परै नहिं सूझि।
रहौं लजाइ, 'मुहम्मद'! बात कहौं का बूझि?।35।
दौरि दौरि सबही पहँ जैहैं। उतर देइ सब फिरि बहरैहैं।।
ईसा कहिन कि कसनाकहत्यों। जौ किछु कहे क उत्तार पवत्थों।।
मैं मुए मानुस बहुत जियावा। औ बहुतै जिउ दान दियावा।।
इब्राहिम कह, कस ना कहत्यों। बात कहे बिन मैं ना रहत्यों।।
मोसौं खेल बंधु जो खेला। सर रचि बाँधि अगिन महँ मेला।।
तहाँ अगिन हुँत भइ फुलवारी। अपडर डरौं, न पा सँभारी।।
नूह कहिन, जब परलै आवा। सब जग बूड़, रहेउ चढ़ि नाबा।।
काह कहै कहि... सबै ओढ़ाउब भार।
जस कै बनै मूहम्मद, करु आपन निस्तार।36।

(34) उपकरु=उपकार कर। ठटै=बनाए। बात जेहि होई=जिससे काम हो जाय। कै जानहु बाता=बात करना जानते हो। मकु=कदाचित्, शायद। मोर हुँत=मेरी ओर से। (35) मुँह गरुवाना..मिठाई=कृपा की भिक्षा माँगते मुँह भारी हो गया है, अब और मुँह नहीं खुलता। फरऊँ=मिस्र का बादशाह जिसने इसराईल की संतानों को बहुत सताया था और वे मूसा के नायकत्व में मिस्र से भागे थे (जब मिस्र की सेना ने उनका पीछा किया था तब खुदा ने उनके लिए तो नील नदी या समुद्र का पानी हटा दिया था, पर मिस्री सेना के सामने उसे और बढ़ा दिया था)। रोधि=रोककर। फुर=सच, सत्य। कोह तर=वह पहाड़ जिस पर मूसा को ईश्वर की ज्योति दिखाई पड़ी थी। रावट=महल, जगमगाता स्थान। जापा=पुकारा। हर दाँवन=हर अवसर पर। झाँपा=परदा, ओट। (36) बहरैहै=बहलाएगा। सर=चिता।

सबै भार अस ठेलि ओढ़ाउब। फिर फिर कहब, उतर ना पाउब।।
पुनि रसूल जैहैं दरबारा। पैग मारि भुइँ करब पुकारा।।
तैं सब मानस एक गोसाईं। कोइ न आव उमत के ताईं।।
जेहि साँचहौं सो चुप होइ रहै। उमत लाइ केहु बात न कहै।।

मोरे चाँड़ केहु नहिं चाँड़ा। देखा दुख, सबही मोहिं छाँड़ा।।
मोहिं अस तहीं लाग करतारा। तोहि होइ भल सोइ निस्तारा।।
जो दुख चहसि उमत कहँ दीन्हा। सो सब मैं अपने सिर लीन्हा।।
लेखि जोखि जो आवै, मरन गँजन दुख दाहु।
मो सब सहै 'मुहम्मद', दुखी करहु जनि काहु।37।
पुनि रिसाई कै कहै गोसाई। फातिम कह ढूँढ़हु दुनियाई।।
का मोसौं उन झगर पसारा। हसन हुसैन कहौ को मारा।।
ढूँढ़े जगत कतहुँ ना पैहैं। फिरि कै जाइ मारि गोहरैहैं।।
ढूँढ़ि जगत दुनिया सब आयउँ। फातिम खोज कतहुँ ना पायउँ।।
आयसु होइ अहैं पुनि कहाँ। उठा नाद हैं धारती महाँ।।
मूँदै नैन सकल संसारा। बीबी उठैं करै निस्तारा।।
जो कोइ देखै नैन उ।ारी। तेहि कहँ छार करौं धारि जारी।।
आयसु होइहि दैउ कर, नैन रहै सब झाँपि।।
एक ओर डरैं 'मुहम्मद', उमत मरै डरि काँपि।38।
उट्ठिन बीबी तब रिस किहें। हसन हुसेन दुवौ सँग लिहें।।
तै करता हरतासब जानसि। झूँठै फुरै नीक पहिचानसि।।
हसन हुसेन दुवौ मोर बारे। दुनहु यजीद कौन गुन मारे?।।
पहले मोर नियाव निबारू। तेहि पाछे जेतना संसारू।।
समुझें जीउ आगि महँ दहऊँ। देहु दादि तौ चुप कै रहऊँ।।
नाहिं त देउँ सराप रिसाई। मारौं आहि अर्श जरि जाई।।
बहु संताप उठै निज, कैसहु समुझि न जाइ।
बरजहु मोह 'मुहम्मद', अधिक उठै दुख दाइ।39।
पुनि रसूल कहँ आयसु होई। फातिम कहँ समुझावहु सोई।।
मारै आहि अर्श जरि जाई। तेहि पाछ आपुहि पछिताई।।

(37) भारि ठेलि ओढ़ाउब=भार मुहम्मद पर ही डालेंगे। पैग मारि=आसन मारकर। केहु=कोई (अवध) चाँड़=चाह, कामना। तहीं=तू ही। गँजन=पीड़ा, साँसत। (38) फातिम=बीबी फातिमा, मुहम्मद साहब की कन्या जिसके दो लड़के हसन और हुसैन करबला के मैदान में कष्ट से मारे गए और कोई खड़ा न हुआ। मारि=बहुत (अवधा)। गोहरैहैं=पुकारेंगे। नाद=आकाशवाणी। (39) किहें लिहें=किए लिए (अनघ)। बारे=बालक, लड़के। दादि हेहु=इंसाफ करो। अर्श=आसमान (का सबसे ऊँचा तबक)। दुखदाइ=दु:खदाह।

जौ नहिं बात क करै बिषादू। जानी मोहिं दीन्ह परसादू।।
जौ बीबी छाँड़हि यह दोखू। तौ मैं करौं उमत कै मोखू।।
नाहिं त घालि नरक महँ जारौं। लौटि जियाइ मुए पर मारौं।।
अग्नि खंभ देखहु जसआगे। हिरकत छार होइ तेहि लागे।।
चहुँ दिसि फेरि सरग लै लावौं। मुँगरन्ह मारौं लोह चटावौं।।
तेहि पाछै धारि मारौं, घालि नरक के काँठ।
बीबी कहँ समुझावहु, जौ रे उमत कै चाँट।40।
पुनि रसूल तलफत तहँ जैहैं। बीबिहि बार बार समुझैहैं।।
बीबी कहब घाम कत सहहू? कस ना बैंठि छाहँ महँ रहहू।।
सब पैगंबर बैठे छाहाँ। तुम कस तपौ बजर अस माहाँ?।।
कहब रसूल, छाँह का बैठौं ? उमत लागि धूपहु नहिं बैंठौं।।
तिन्हसब बाँधि धाम मह मेले। का भा मोरे छाहँ अकेले।।
तुम्हरे कोह सबहि जो मरै। समुझहु जीउ, तबहि निस्तरे।।
जो मोहिं चहौ निवारहु कोहू। तब बिधि करै उमत पर छोहूँ।।
बहु दुख देखि पिता कर, बीबी समुझा जीउ।
जाइ मुहम्मद जिनवा, ठाढ़ पाग के गीउ।41।
तब रसूल के कहें भइ माया। जिन चिंता मानहु, भइ दाया।।
जौ बीबी अबहूँ रिसियाई। सबहि उमत सिर आइ बिसाई।।
जबफातिम कहँ बेगि बोलावहु। देइ दाद तौ उमत छोड़ावहु।।
फातिम आइ कै पार लगावा। धारि यजीद दोजख महँ गावा।।
अंत कहा, धारिजान से मारै। जिउ देइ पुनि लौटि पछारै।।
तस मारब जेहि भुइँ गड़ि जाई। खन खन मारै लौटि जियाई।।
बजर अगिन जारब कै छारा। लौटि दहै जस दहै लोहारा।।
मारि मारि घिसियावै, धारि दोजख महँ देव।
जेतनी सिस्टि 'मुहम्मद', सबहि पुकारै लेब।42।
पुनि सब उम्मत लेब बुलाई। हरू गरू लागब बहिराई।।
निरखि रहौती काढ़ब छानी। करब निनार दूधा औ पानी।।
बाप क पूत, न पूत क बापू। पाइहि तहाँ न पुन्नि न पापू।।
आपहि आप आइकै परी। कोउ न कोउ क धारहरि करी।।

(40) जानौं मोहि...परसादू=तो समझो कि मैं प्रसन्न हो गया या मैंने बख्श दिया। लौटि=फिर-फिर। हिरकत=सटते ही। काँट=किनारे, तट पर। जौ रे...

चाँट=यदि तुम्हें अपनी उम्मत की इतनी चाह है। (41) बजर=बज्र धूप। समुझहु जीउ=अपने जी में ढाँढ़स बाँधो। पाग कै गीउ=गले में पगड़ी डालकर, बड़ी अधीनता से। (42) यजीद=जिसने हसन हुसैन को मारा था। गवा=गया। घिसियावै=घसीटते हैं। पुकारै लेब=पुकार लेंगे।

कागज काढ़ि लेब सब लेखा। दुख सुख जो पिरथिवी महँ देखा।।
पुन्नि पियाला लेखा माँगब। उतर देत उन पानी खाँगब।।
नैन क देखास्रवन क सुना। कहब, करब, औगुन औ गुना।।
हाथ, पाँव, मुख, काया, स्रवन, सीस औ आँखि।।
पाप न छपै 'मुहम्मद', आइ भरै सब साखि।43।
देह क रोवाँ बैरी होइहैं। वजर बिया एहि जिउ के बोइहैं।।
पाप पुन्नि निरमल कै धोउब। राखब पुन्नि, पाप सब खोउब।।
पुनि कौसर पठउब अन्हवावै। जहाँ कया निरमल सब पावै।।
बुड़की देब देह सुख लागी। पलुहब उठि, सोवत अस जागी।।
खोरि नहाइ धोइ सब दुँदू। होइ निकरहिं पूनिउ कै चंदू।।
सब क सरीर सुबास बसाई। चंदन कै अस ाानी आई।।
झूठे सबहि आप पुनि साँचे। सबहि नबी के पाछै बाँचे।।
नबिहि छाँड़ि होइहि सबहि, बारह बरस क राह।
सब अस जान 'मुहम्मद', होइ बरस कै राह।44।
पुनि रसूल नेवतब जेवनारा। बहुत भाँति होइहि परकारा।।
ना अस देखा, ना अस सुना। जौ सरहौं तौ है दस गुना।।
पुनि अनेक बिस्तर तहँ डासब। बास सुबास कपूर ते बासब।।
होइ आयसु जौ बेगि बोलाउब। औ सब उमत साथ लेइ आउब।।
जिबरईल आगे होइ जइहैं। पग डारै कहँ आयसु देइहैं।।
चलब रसूल उमत लेइ साथा। परग परग पर नावत माथा।।
'आवहु भीतर' बेगि बोलाउब। बिस्तर जहाँ तहाँ बैठाउब।।
झारि उमत सब बैठी, जोरि कै एकै पाँति।
सब के माँझ 'मुहम्मद', जानो दुलह बराति।45।
पुनि जेंवन कहँ आवै लागै। सबके आगे धारत न खाँगै।।
भाँति भाँति कर देखब थारा। जानब ना दहुँ कौन प्रकारा।।
पुनि फरमाउब आप गोसाई। बहुतै दुख देखेउ दुनियाई।।

हाथन से जेंवन मुख डारत। जीभ पसारत दाँत उघारत।।
कूँचत खात बहुत दुख पायउ। तहँ ऐसे जेवनार जेंवायउ।।

(43) हरू=हलका, ओछा। गरू=भारी, गंभीर। बहिराइ लागब=निकलने लगेंगे। रहौती=रहन-सहन, आचरण। निनार=न्यारा, अलग। धारहरि=धार-पकड़, सहायता। करी=करिहि, करेगा। (44) कौसर=स्वर्ग की एक नदी या चश्मा। बुड़की=गोता। पलुहब=पनपेगी। खोरि=अवगाहन करके। दुंदू=द्वंद्व, प्रपंच। घानी=ढेर। (45) जौ सरहौं...दस गुना=यदि सराहता हूँ तो उसका दस गुना ठहरता है।

अबजिन लौटि कस्ट जिउ करहू। सुख सवाद औ इंद्री भरहू।।
पाँच भूत आतमा सेराई। बैठि अघाउ, उदर ना भाई।।
ऐस करब पहुनाई, तब होइहि संतोख।
दुखी न होहु 'मुहम्मद', पोखि लेहु फुर पोख।46।
हाथन्ह से केहु कौर न लेई। जोइ चाह मुख पैठे सोई।।
दाँत, जीभ, मुखकुछन डोलाउब। जस जस रुचि हैतसतसखाउब।।
जैस अन्न बिनु कूँचे रूचौ। तैस सिठाइ जौ कोऊ कूँचौ।।
एक एक परकार जो आए। सत्तार सत्तार स्वाद सो पाए।।
जहँ जहँ जाइ के परै जुड़ाई। इच्छा पूजै खाइ अघाई।।
अनचाखे राते फर चाखा। सब अस लेइ अपरस रस राखा।।
जलम जलम कै भूख बुझाई। भोजन केरे साथै जाई।।
जेंवन चवन होइ पुनि, पुनि होइहि खिलवान।
अमृत भरा कटोरा, पियहु 'मुहम्मद' पान।47।
एक तौ अमृत, बास कपूरा। तेहि कहँ कहा शराब तहूरा।।
लागब भरि भरि देइ कटोरा। पुरुब ज्ञान अस भरै महोरा।।
ओहि कै मिठाइ भाँति एक दाऊँ। जलम न मानब होइ अबकाहूँ।।
सचु मतवार रहब होइ सदा। रहसै कूदै सदा सरबदा।।
कबहुँ न खोवै जलमखुमारी। जनौ बिहान उठै भरि बारी।।
ततखन बासि बासि जनु घाला। घरी घरी जस लेब पियाला।।
सबहि क भा मन सो मद पिया। नव औतार भवा औ जिया।।
फिरै तँबोल, मया से, कहब अपुन लेइ खाहु।
भा परसाद 'मुहम्मद', उठि बिहिस्त महँ जाहु।48।
कहबरसूल, बिहिस्ति न जाऊँ। जौ लगि दरस तुम्हार न पाऊँ।।
उघर न नैन तुमहिं बिनु देखे। सबहि घंबिरथा मोरे लेखे।।

तौ लै केहु बैकुंठ न जाई। जौ लै तुम्हरा दरस न पाई।।
करु दीदार, देखौं मैं तोहीं। तौ पै जीउ जाइ सुख मोहीं।।
देखें दरस नैन भरि लेऊँ। सीस नाइ पै भुइँ कहँ देऊँ।।

(46) तहँ=संसार में। लौटि=स्वर्ग में लौट आकर। सेराई=शीतल हो। उदर ना भाई=यहाँ पेट नहीं है जिसे भरना पड़े। फुर पोख=सच्ची तुष्टि। (47) तैस सिठाइ...कूँचौ=कूँचने पर वह वैसा ही सीठी सा नीरस लगता है। सिठाइ=सीठी सा फीका लगता है। अपरस=अछूता। जलम=जन्म (अवधा)। खिलवान=खिलारी, धानिया, खरबूजे आदि के तले बीज जो भोजन के पीछे दिए जाते हैं। (48) शराब तहूरा=शराबुत्ताहूरा, स्वर्ग की शराब। महोरा=महुअरा, मधु, मद्य। सचु मतवार=आनंद से मतवाला। बिहान...बारी=मानो नित्य मुँह तक भरा प्याला मिल जाता है। परसाद=प्रसन्नता, कृपा।

जलम मोर लागा सब थारा। पलुहै जीउ जा गीउ उभारा।।
होइ दयाल करु दिस्टि फिरावा। तोहि छाँड़ि मोहि और न भावा।।
सीस पायँ भुइँ लावौं, जौ देखौं तोहि आँखि।
दरसन देखि 'मुहम्मद', हिये भरौं तोहि साखि।49।
सुनहु रसूल! होत फरमानू। बोल तुम्हार कीन्ह परमानू।।
तहाँ हुतेउँ जह हुतेउ न ठाऊँ। पहिले रचेउँ मुहम्मद नाऊँ।।
तुम बिनु अबहुँ न परगट कीन्हेउँ। सहस अठारह कहँ जिउदीन्हेउँ।।
चौदह खंड ऊपर तर राखेउँ। नाद चलाइ भेद बहु भाखेउँ।।
चार फिरिस्तन बड़ औतारेउँ। सात खंड बैकुंठ सँवारेउँ।।
सवा लाख पैगंबर सिरजेउँ। कर करतूति उन्हहि धौ बेधोउँ।।
औरन्ह कर आगे कत लेखा। जेतना सिरजा को ओहि देखा।।
तुम तहँ एता सिरजा, आप कै अंतरहेत।
देखहु दरस 'मुहम्मद'! आपनि उमत समेत।50।
सुनि फरमानहरष जिउ बाढ़े। एक पाँव से भए उठि ठाढ़े।।
झारि उमत लागी तब तारी। जेता सिरजा पुरुष औ नारी।।
लाग सबन्ह सहुँ दरसन होई। ओहि बिनु देखे रहा न कोई।।
एक चमकार होइ उजियारा। छपै बीजु तेहि के चमकारा।।
चाँद सूरुज छपिहैं बहु जोती। रतन पदारथ मानिक होती।।
सो मनि दिपें जो कीन्हि थिराई। छपा सो रंग गात पर आई।।
ओहु रूप निरमल होइ जाई। और रूप ओहि रूप समाई।।

ना अस कबहूँ देखा, ना केहू ओहि भाँति।
दरसन देखि 'मुहम्मद', मोहि परे बहु भाँति।51।
दुइदिनलहि कोउ सुधि न सँभारे। बिनु सुधि रहे, न नैन उघारे।।
तिसरे दिन जिबरैल जौ आए। सब मदभाते आनि जगाए।।
जे हिय भेदि सुदरसन राते। परे परे लोटै जस माते।।
सब अस्तुति कै करै बिसेखा। ऐस रूप हम कतहुँ न देखा।।
अब सब गयउ जलम दुख धोई। जो चाहिय हठि पावा सोई।।

(49) बिरथा=वृथा, व्यर्थ। जाई=जाइहि, जायगा। पाई=पाइहि, पाएगा। जाइ=उत्पन्न हो। जलम=जन्म। थारा=थाला (जिसमें पौधा लगाया जाता है)। गीउ उभारा=गर्दन ऊपर की, ऊपर दृष्टि की।

(50) हुतेउँ=मैं था। हुतेउ न ठाऊँ=जहाँ कोई स्थान न था, लामकान। अबहुँ=अब तक। नाद=कलाम। कहि करतूति=कर्तव्य बतलाकर। अंतरहेत=अंतर्हित, ओट में, अदृश्य। (51) झारि=सारी, कुल। तारी लागी=टकटकी लग गई, पलकों का गिरना बंद हो गया। सहुँ=सम्मुख, साक्षात्। चमकार=चमत्कार, ज्योति। कीन्हि थिराई=स्थिर रह सके। छपा सो रंग...आई=उनके शरीर पर उस ज्योति की छाप लग गई।

अरु-निहचिंत जीउ बिधि कीन्हा। जौ पिय आपन दरसन दीन्हा।।
मन कै जेति आस सब पूजी। रही न कोइ आस गति दूजी।।
मरन, गँजन औ परिहँस, दुख, दलिद्र सब भाग।
सब सुख देखि 'मुहम्मद', रहस कूद जिउ लाग।52।
जिब अइल कहँ आयसु होइहि। अछरिन्ह आइ आगे पय जोइहि।।
उमत रसूल केर बहिराउब। कै असवार बिहिस्त पहुँचाउब।।
सात बहिस्त बिधिनै औतारा। औ आठई शदाद सँवारा।।
सो सब देब उमत कहँ बाँटी। एक बराबर सब कहँ आँटी।।
एक एक कहँ दीन्ह निवासू। जगत लोक बिरसै कबिलासू।।
चालिस चालिस हूरैं सोई। औ सँग लागि बियाही जोई।।
औ सेवा कहँ अछरिन्ह केरी। एक एक जनि कहँ सौ सौ चेरी।।
ऐसे जतन बियाहैं, जस साजै बरियात।
दूलह जतन मुहम्मद, बिहिस्त चले बिहँसात।53।
जिबराइल इतात कहँ धाए। चोल आनि उम्मत पहिराए।।
पहिरहु दगल सुरँग रँग राते। करहु सोहाग जनहु मद भाते।।

ताज कुलह सिर मुहम्मद सोहै। चंद बदन औ कोकब मोहै।।
न्हाइ खोरि अस बनी बराता। नबी तँबोल खात मुख राता।।
तुम्हरे रुचे उमत सब आनब। औ सँवारि बहु भाँति बखानब।।
खड़े गिरत मदमाते ऐहैं। चढ़ि कै घोड़न कहँ कुदरैहैं।।
जिन भरि जलम बहुत हिय जारा। बैठि पाँव देइ जमै ते पारा।।
जैसे नबी सँवारे, तैसे बने पुनि साज।
दूलह जतन 'मुहम्मद', बिहिस्त करैं सुख राज।54।
तानब छत्र मुहम्मद माथे। औ पहिरैं फूलन्ह बिनु गाँथे।।
दूलह जतन होब असवारा। लिए बरात जैहैं संसारा।।
रचि रचि अछरिन्ह कीन्ह सिंगारा। बास सुबास उठै महकारा।।
आज रसूल बियाहन ऐहैं। सब दुलहिन दूलह सहुँ नैहैं।।
आरति करि सब आगे ऐहैं। नंद सरोदन सब मिलि गैहैं।।
मँदिरन्ह होइहि सेज बिछावन। आजु सबहि कहँ मिलिहैं रावन।।
बाजन बाजै बिहिस्त दुवारा। भीतर गीत उठै झनकारा।।

(52) लहि=तक। परिहँस=ईष्या, डाह, कुढ़न (अवधा)। रहस=आनंद। (53) अछरी=अप्सरा। बहिराउब=निकालेंगे, चलाएँगे। बिरसैं=विलास करते हैं। हूर=बहिश्त की अप्सरा। जोई=जोय, स्त्री। ऐसे जतन=ऐसे ढंग से, इस प्रकार। (54) इतात=आज्ञापालन। चोल=वस्त्र, पहनावा। दगल=लंबा घंगरखा। कुलह=टोप। बहुत हिय जारा=ईश्वर के विरह में लीन रहे। जतन=प्रकार, समान।

बनि बनि बैठीं अछरी, बैठि जोहैं कबिलास।
बेगिहि आउ 'मुहम्मद' पूजै मन कै आस।55।
जिबरईल पहिले से जैहैं। जाइ रसूल बिहिस्त नियरैहैं।
खुलिहैं आठौ पँवरि दुवारा। औ पैठे लागे असवारा।।
सकल लोग जब भीतर जैहैं। पाछे होइ रसूल सिधौंहैं।।
मिलि हूरै नेवछावरि करिहैं। सबके मुखन्ह फूल अस झरिहैं।।
रहसिरहसि तिनकरबकिरीड़ा। अगर कुंकुमा भरा सरीरा।।
बहुत भाँतिकर नंद सरोदू। बास सुबास उठै परमोदू।।
अगर, कपूर, बेना, कस्तूरी। मँदिर सुबास रहब भरपूरी।।
सोवन आजु जो चाहै, साजन मरदन होइ।
देहिं सोहाग 'मुहम्मद', सुख बिरसै सब कोइ।56।
पैठि बिहिस्त जौ नौनिधि पैहैं। अपने अपने मँदिर सिधौहैं।।

एक एक मंदिर सात दुवारा। अगर चंदन के लाग केवारा।।
हरे हरे बहु खंड सँवारे। बहुत भाँति दइ आपु सँवारे।।
सोने रूपै घालि उँचावा। निरमल कुहँकुहँ लाग गिलावा।।
हीरा रतन पदारथ जरे। तेहि क जोति दीपक जस बरे।।
नदी दूधा अतरन कै बहहीं। मानिक मोति परे भुइँ रहहीं।।
ऊपर गा अब छाहँ सोहाई। एक एक खंड चहा दुनियाई।।
तात न जूड़ न कुनकुन, दिवस राति नहिं दुक्ख।
नींद न भूख 'मुहम्मद', सब बिरसैं अति सुक्ख।57।
देखत अछरिन केरि निकाई। रूप तें मोहि रहत मुरछाई।।
लाल करत मुख जोहब पासा। कीन्ह चहैं किछु भोग बिलासा।।
हैं आगे बिनवैं सब रानी। और कहैं सब चेरिन्ह आनी।।
ए सब आवैं मोरे निवासा। तुम आगे लेइ आउ कबिलासा।।
जो अस रूप पाटपरधानी। औ सबहिन्ह चेरिन्ह कै रानी।।
बदन जोति मनि मापे भागू। औ बिधि आगर दीन्ह सोहागू।।
साहस करैं सिंगार सँवारी। रूप सुरूप पद्मावती नारी।।
पाट बैठि नित जोहैं, बिरहन्ह जारै माँस।
दीनदयाल 'मुहम्मद', मानहु भोग बिलास।58।
सुनहिं सुरूप अबहिं बहु भाँती। इनहिं चाहि जो रुपवाँती।।
सातौं पवँरि नघत तिन्हपेखब। सातइँ आए सो कौकुत देखब।।

(55) नंद=आनंद। सराद=स्वर (फारसी)। रावन=रमण करनेवाला, प्रियतम। (56) पँवरि=डयोढ़ी। साजन=स्वजन, प्रियतम। मरदन=आलिंगन। बिरसै=बिलसे। (57) दइ=दैव, विधाता। गिलावा गारा। तात=गरम। कुनकुन=कुनकुना। आधा गरम। (58) लाल=प्यार, दुलार। आगर=बढ़कर।

चले जाब आगे तेहि आसा। जाइ परब भीतर कबिलासा।।
तखत बैठि सब देखब रानी। जे सब चाहि पाट परधानी।।
दसन जोति उट्ठै चमकारा। सकल बिहिस्त होइ उजियारा।।
बारहबानी कर जो सोना। तेहि तें चाहि रूप अति लोना।।
निरमल बदन चंद कै जोती। सब क सरीर दिपैं जस मोती।।
बास सुबास छुवै जेहि, बेधि भँवर कहँ जात।
बर सो देखि 'मुहम्मद', हिरदै महँ न समात।59।
पैग पैग जस जस नियराउब। अधिक सवाद मिलै कर पाउब।।

नैन समाइ रहै चुप लागे। सब कहँ आइ लेहिं होइ आगे।।
बिसरहु दूलह जोबन बारी। पायउ दुलहिन राजकुमारी।।
एहि महँ सो कर गहि लेइ जैहैं। आधो तखत पै लै बैठैहैं।।
सब अछूत तुम कहँभरि राखै। महै सवाद होइ जो चाखै।।
नित पिरीत नितनवनव नेहू। नित उठि चौगुन होइ सनेहू।।
नित्ताहि नित्ताजो बारि बियाहै। बीसौ बीस अधिक ओहि चाहै।।
तहाँ न मीचु, न नींद दुख, रह न देह महँ रोग।
सदा अनंद 'मुहम्मद', सब सुख मानै भोग।60।

(59) रुपवाँती=रूपवती। कौकुत=कौतुक, चमत्कार। चाहि=बढ़कर। बास सुवास...जात=जिस भौंरे को बेधाकर छूने के लिए सुगंधा जाती है। (60) जोबन बारी=(क) यौवन की वाटिका, (ख) युवती बालाएँ। महै=बहुत ही। बीसौ बीस=पहले से और बढ़कर।

5

जायसी का बारहमासा

जायसी का बारहमासा मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित महाकाव्य पद्मावत का एक हिस्सा है। नागमती (रत्नसेन की विवाहिता पत्नी) अपने प्रियतम रत्नसेन के वियोग में व्याकुल है। रत्नसेन जब से चित्तौड़ छोड़ कर गए हैं, तब से वापस नहीं आये, नागमती को ऐसा लगता है कि शायद हमारे प्रियतम किसी अन्य युवती के प्रेम –जाल के बन्धन में बंध गए हैं। पति के समीप रहने पर जो प्रकृति सुखकारी थी, अब वही प्रकृति पति के दूर रहने पर नागमती के लिए अत्यधिक पीड़ा दायक है। नागमती कहती है :

नागर काहु नारि बस परा। तेइ मोर पिउ मोसों हरा।

सखियों द्वारा नागमती को धैर्य धारण का प्रयास

पाट महादेइ! हिये न हारू। समुझि जीउ, चित चेतु सँभारू।।
भौंर कँवल सँग होइ मेरावा। सँवरि नेह मालति पहँ आवा।।
पपिहै स्वाती सौं जस प्रीती। टेकु पियास, बाँधु मन थीती।।
धरतिहि जैस गगन सौं नेहा। पलटि आव बरषा ऋतु मेहा।।
पुनि बसंत ऋतु आव नवेली। सो रस, सो मधुकर, सो बोली ।।
जिनि अस जीव करसि तू बारी। यह तरिवर पुनि उठिहि सँवारी ।।
दिन दस बिनु जल सूखि बिधंसा। पुनि सोइ सरवर सोई हंसा।।

मिलहिं जो बिछुरे साजन, अंकम भेंटि गहंत।
तपनि मृगसिरा जे सहैं, ते अद्रा पलुहंत।।

आषाढ़ मास में नागमती की विरह - वेदना

चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा। साजा विरह दुंद दल बाजा।।
धूम साम, धौरे घन धाए। सेत धजा बग पाँति देखाए।।
खड्ग बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरसहिं घन घोरा।।
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी। कंत ! उबारु मदन हौं घेरी।।
दादुर मोर कोकिला,पीऊ। घिरै बीजु, घट रहै न जीऊ।।
पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह,मंदिर को ?
अद्रा लाग लागि भुइँ लेई। मोहिं बिनु पिउ को आदर देई।।
जिन घर कंता ते सुखी,तिन्ह गारो औ गर्व।
कंत पियारा बाहिरै,हम सुख भूला सर्व।।

श्रावण मास में नागमती की विरह - वेदना

सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी,हौं विरह झुरानी।।
लाग पुनरबसु पीउ न देखा। भइ बाउरि,कहँ कंत सरेखा।।
रक्त कै आँसु परहिं भुइँ टूटी। रेंगि चली जस बीरबहूटी।।
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरियर भूमि कुसुम्भी चोला।।
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा। बिरह भुलाइ देइ झकझोरा।।
बाट असूझ अथाह गँभीरी। जिउ बाउर भा फिरै भँभीरी।।
जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी।।
परबत समुद अगम बिच,बीहड़ घन बन ढाँख।
किमि कै भेटौं कंत तुम्ह ? ना मोहिं पाँव न पंख।।

भाद्रपद मास में नागमती की विरह - वेदना

भा भादों दूभर अति भारी। कैसे भरौं रैनि अँधियारी।।
मंदिर सून पिउ अनतै बसा। सेज नागिनी फिरि फिरि डसा।।
रही अकेलि गहे एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी।।
चमक बीजु घन तरजि तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा।।
बरसै मघा झकोरि झकोरी। मोरि दुइ नैन चुवैं जस ओरी।।

धनि सूखै भरे भादौं माहाँ। अबहुँ न आएन्हि सीचेन्हि नाहाँ।।
पुरबा लाग भूमि जल पूरी। आक जवास भई तस झूरी।।
जल थल भरे अपूर सब,धरति गगन मिलि एक।
धनि जोबन अवगाह महँ दे बूड़त पिउ ! टेक।।

आश्विन मास में नागमती की विरह - वेदना

लाग कुवार,नीर जग घटा। अबहुँ आउ,कंत ! तन लटा।।
तोहि देखे पिउ ! पलुहै कया। उतरा चीतु बहुरि करु मया।।
चित्र मित्र मीन कर आवा। पपिहा पीउ पुकारत पावा।।
उआ अगस्त,हस्ति घन गाजा। तुरय पलानि चढ़े रन राजा।।
स्वाति बूँद चातक मुखघ परे। समुद सीप मोती सब भरे।।
सरवर सँवरि हंस चलि आये। सारस कुरलहिं,खँजन दिखाए।।
भा परगास, बाँस बन फूले। कंत न फिरे बिदेसहिं भूले।।
बिरह हस्ति तन सालै,घाय करै चित चूर।
बेगि आइ पिउ ! बाजहु,गाजहु होइ सदूर।।

कार्तिक मास में नागमती की विरह - वेदना

कातिक सरद चंद उजियारी। जग सीतल,हौं बिरहै जारी।।
चौदह करा चाँद परगासा। जनहुँ जरै सब धरति अकासा।।
तन मन सेज जरै अगिदाहू। सब कह चंद,भएहु मोहि राहू।।
चहूँ खंड लागै अँधियारा। जौ घर नाहीं कंत पियारा।।
अबहुँ,निठुर !आउ एहि बारा। परब देवारी होइ संसारा।।
सखि झूमक गावैं अंग मोरी। हौं झुराव बिछुरी मोरि जोरी।।
जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूजा। मो कह बिरह,सवति दुःख दूजा।।
सखि मानें तिउहार सब,गाइ देवारी खेल।
हौं का गावौं कंत बिनु,रही छार सर मेलि।।

मार्गशीर्ष मास में नागमती की विरह - वेदना

अगहन दिवस घटा,निसि बाढ़ी। दूभर रैनि,जाइ किमि गाढ़ी।।
अब यहि बिरह भा राती। जरौ बिरह जस दीपक बाती।।
काँपै हिया जनावै सीऊ। तो पै जाइ होइ संग पीउ।।

घर घर चीर रचे सब काहू। मोर रूप रंग लेइगा नाहू।।
पलटि न बहुरा गा जो बिछोई। अबहुँ फिरै,फिरै रंग सोई।।
बज्र अगिनि बिरहिन हिय जारा।सुलुगि,सुलुगि दगधै होइ छारा।।
यह दु:ख दरद न जानै कंतू। जोवन जनम करै भसमंतू।।
पिउ सों कहेउ संदेसडा, हे भौंरा ! हे काग !
सो धनि बिरहै जरि मुई,तेहि क धुवाँ हम्ह लाग।।

पौष मास में नागमती की विरह - वेदना

पूस जाड़ थर थर तन काँपा। सुरुजु जाइ लंका दिशि चाँपा।।
बिरह बाढ़ दारुन भा सीऊ। कँपि कँपि मरौं,लेइ हरि जीऊ।।
कंत कहाँ लागौं ओहि हियरे। पंथ अपार, सूझ नहिं नियरे।।
सौर सपेती आवै जूड़ी। जानहु सेज हिवंचल बूड़ी।।
चकई निसि बिछुरै दिन मिला हौं दिन राति बिरह कोकिला।।
रैनि अकेलि साथ नहिं सखी। कैसे जियै बिछोही पंखी।।
बिरह सचान भएउ तन जाड़ा। जियत खाइ औ मुये न छाँड़ा।।
रकत ढुरा माँसू गरा, हाड़ भएउ सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई, पीऊ समेटहिं पंख।।

माघ मास में नागमती की विरह - वेदना

लागेउ माघ,परै अब पाला। बिरहा काल भएउ जड़काला।।
पहल पहल तन रुई झाँपै। हहरि हहरि अधिकौ हिय काँपै।।
आइ सूर होइ तपु,रे नाहा। तोहि बिनु जाड़ न छूटै माहा।।
एहि माह उपजै रसमूलू। तू सो भौंर, मोर जोवन फूलू।।
नैन चुवहिं जस महवट नीरू। तोहि बिनु अंग लाग सर चीरु।।
टप टप बूँद परहिं जस ओला। बिरह पवन होइ मारै झोला।।
केहि क सिंगार को पहिरु पटोरा। गीउ न हार। रही होइ डोरा।।
तुम बिनु काँपै धनि हिया, तन तिनउर भा डोल।
तेहि पर बिरह जराइ कै, चहै उडावा झोल।।

फाल्गुन मास में नागमती की विरह - वेदना

फागुन पवन झकोरा बहा। चौगुन सीउ जाइ नहिं सहा।।
तन जस पियर पात भा मोरा। तेहि पर बिरह देहि झकझोरा।।

तरिवर झरहिं बन ढाखा। भइ ओनंत फूलि फरि साखा।।
करहिं बनसपति हिये हुलासू। मो कह भा दून उदासू।।
फागु करहिं सब चाँचरि जोरी। मोहिं तन लाइ दीन्ह जस होरी।।
जो पै पीउ जरत अस पावा। जरत मरत मोहिं रोष न आवा।।
राति दिवस सब यह जिउ मोरे। लगौं निहोर कंत अब तोरे।।
यह तन जारौं छार कै,कहउँ कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परै,कंत धरैं जहँ पाव।।

चैत्र मास में नागमती की विरह - वेदना

चौत बसंता होइ धमारी। मोहिं लेखे संसार उजारी।।
पंचम बिरह पंच सर मारै। रकत रोइ सगरौ बन ढारै।
बूढ़ि उठे सब तरिवर पाता। भीजि मजीठ,टेसु बन राता।।
बौरे आम फरें अब लागे। अबहुँ आउ घर,कंत सभागे।।
सहस भाव फूली बनसपती। मधुकर घूमहिं सँवरि मालती।।
मो कह फूल भये सब काँटे। दिस्टि परत जस लागहिं चाँटे।।
फिर जोवन भए नारँग साखा।सुआ बिरह अब जाइ न राखा।।
घिरिनि परेवा होइ पिउ ! आउ बेगि परु टूटि।
नारि पराए हाथ है,तोहि बिनु पाव न छूटि।।

वैशाख मास में नागमती की विरह - वेदना

भा बैसाख तपनि अति लागी। चोआ चीर चँदन भा आगी।।
सूरज जरत हिवंचल ताका। बिरह बजागि सौंह रथ हाँका।।
जरत बजागिनि करु, पिऊ छाहाँ। आइ बुझाउ अंगारन्ह माहाँ।।
तोहि दरसन होइ सीतल नारी। आइ आगि तें करु फुलवारी।।
लागिउँ जरै, जरै जस भारू। फिर फिर भूँजेसि तजेउँ न बारू।।
सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ कै बिहराई।।
बिहरत हिया करहु, पिउ टेका। दीठि दवँगरा मेरवहु एका।।
कँवल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गयउ सुखाइ।
कबहुँ बेलि फिरि पलुहै, जाऊ पिऊ सींचौ आइ।।

ज्येष्ठ मास में नागमती की विरह - वेदना

जेठ जरै जग, चलै लुवारा। उठहिं बवंडर परहिं अँगारा।
बिरह गाजि हनुवँत होइ जागा। लंकादाह करै तनु लागा।।
चारिहु पवन झकोरै आगी। लंका दाहि पलंका लागी।।
दहि भइ साम नदी कालिंदी। बिरह क आगि कठिन अति मंदी।।
उठै आगि औ आवै आँधी। नैन न सूझ मरौं दु:ख बाँधी।।
अधजर भयउँ,मासु तन सूखा। लागेउ बिरह काल होइ भूखा।।
माँसु खाइ सब हाडन्ह लागै। अबहुँ आउ,आवत सुनि भागै।।
गिरि,समुद्र,ससि,मेघ,रवि,सहि न सकहिं यह आगि।
मुहमद सती सराहिये,जरै जो अस पिउ लागि।

6

नागमती वियोग खण्ड

जायसी के विरहाकुल हृदय की गहन अनुभूति का सर्वाधिक मार्मिक-चित्रण नागमती के विरह-वर्णन में प्राप्त होता है। डॉ. कमल कुलश्रेष्ठ के शब्दों में, ''वेदना का जितना निरीह, निरावरण, मार्मिक, गम्भीर, निर्मल एवं पावन स्वरूप इस विरह-वर्णन में मिलता है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है।

''वास्तव में इसको पद्मावत का प्राण-बिन्दु माना जा सकता है। विरह-विदग्ध हृदय की संवेदनशीलता के इस चरम उत्कर्ष को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे प्रेम के चतुर चितेरे कवि ने नागमती को स्वयं में साकार कर लिया हो।

नागमती विरह-वर्णन में जैसे व्यथा स्वयं ही मुखारित होने लगी है। इसके लिए नागमती के विरह का आधार भी एक कारण है।

नागमती का पतिप्रेम विरहावस्था में प्रगाढ़तर हो गया। संयोग-सुख के समान उसने विरह का भी अभिनन्दन किया। स्मृतियों के सहारे, पति के प्रत्यागमन की आशा में उसने पथ पर पलकें बिछा दीं।

किन्तु निर्मोही लौटा नहीं। एक वर्ष व्यतीत हो गया, प्रवास आजीवन प्रवास में बदल न जाए इस आशंका मात्र से ही उसका हृदय टूक-टूक हो गया। जायसी ने उसका चित्रण इस प्रकार किया है-

नागमती चितउरपथ हेरा। पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा।।
नागर काहु नारि बस परा। तेइ मोर पिउ मोसौं हरा।।

सुआ काल होई लेइगा पीऊ। पीउ नहिं जात, जात बरऊ जीऊ॥
सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह।
झुरि झुरि पंजर हौ भई, विरह काल मोहि दीन्ह॥

विरह व्यथिता नागमती महलों के वैभव, विलास और साज-सज्जा में कोई आकर्षण अनुभव नहीं करती है, उसके लिए प्रकृति का सौन्दर्य, स्निग्ध कमनीयता, मलयज मोहकता और वासन्ती कौमार्य आदि सभी तत्त्व कष्टदायक हो जाते हैं।

प्रकृति अपना परिधान बदलती है, किन्तु नागमती की विरह-व्यथा तो बढ़ती ही जाती है उसके लिए सारा संसार भयावह लगता है। नागमती की सखियाँ उसे धीरज देने का प्रयास करती हैं, किन्तु सखियों का समझाना भी निरर्थक रह जाता है। इसी स्थल पर जायसी ने बारहमासे का वर्णन किया है।

जायसी ने एक-एक माह के क्रम से नागमती की वियोग-व्यथा का सजीव चित्रण किया है। संयोग के समय जो प्रेम सृष्टि के सम्पूर्ण उपकरणों से आनन्द का संचय करता था, वियोग के क्षणों में वही उससे दुख का सग्रंह करता है।

कवि ने जिन प्राकृतिक उपकरणों और व्यापारों का वर्णन किया है, उनके साहचर्य का अनुभव राजा से लेकर रंक तक सभी करते हैं। उदाहरणस्वरूप कुछ पंक्तियाँ हैं-

चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा। साजा बिरह दुन्द दल बाजा॥
घूम, साम, धौरे घन धाए। सेत धजा बग-पाँति देखाए॥

चारों ओर फैली घटाओं को देखकर नागमती पुकारती है-' ओनई घटा आइ चहुँ फेरी, कन्त! उबारु मदन हौं घेरी'। उस समय नागमती की मनोदशा का यह चित्र तो अत्यन्त मार्मिक है-

जिन्ह घर कन्ता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्ब।
कन्त पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्व॥

श्रावण में चारों ओर जल ही जल फैल जाता है, नागमती की नाव का नाविक तो सात समुद्र पार था। भादों में उसकी व्यथा और भी बढ जाती है। शरद ऋतु प्रारम्भ हुई, जल कुछ उतरा तो वह प्रियतम के लौटने की प्रार्थना करने लगी। भ्रमर और काग द्वारा पति को संदेश भेजते हुए वह कहती है-

पिउ सौ कहेहु संदेसड़ा, हे भौंरा! हे काग!
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहि क धुवाँ हम्ह लाग॥

किन्तु पति न लौटा, वनस्पतियाँ उल्लासित हो गयीं किन्तु नागमती की उदासीनता बढ़ती ही गयी।

'बारहमासा' का महत्त्व बताते हुए **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** लिखते हैं- ''वेदना का अत्यन्त निर्मल और कोमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य जीवन का अत्यन्त मर्मस्पर्शी माधुर्य, अपने चारों ओर की प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय की साहचर्य भावना तथा विषय के अनुसार भाषा का अत्यन्त स्निग्ध, सरल, मृदुल और अकृत्रिम प्रवाह देखने योग्य है। पर इन कुछ विशेषताओं की ओर ध्यान जाने पर भी इसके सौन्दर्य का बहुत कुछ हेतु अनिर्वचनीय रह जाता हैं।'' इस प्रलाप के विषय में आचार्य शुक्ल का यह कथन महत्त्वपूर्ण है-''यह आशिक-माशूकों का निर्लज्ज प्रलाप नहीं है, यह हिन्दू गृहिणी का विरह वाणी है। इसका सात्विक मर्यादापूर्ण माधुर्य परम मनोहर है।''

वन-वन भटकती नागमती अपनी वेदना व्यक्त करती है। आखिर वह पुण्यदशा प्राप्त होती है जहाँ सम्पूर्ण जड़-चेतन एक हो जाते हैं।

मानवी संवेदना पशु-पक्षियों तक भी व्यापक हो जाती है। 'फिर फिर रोव, कोई नहिं बोला' में रानी के अकेलेपन और व्यथा की झलक है तो 'आधी रात विहंगम बोला' में विरह-वर्णन के चरमोत्कर्ष के दर्शन होते हैं।

नागमती ने पद्मावती को भी एक संदेश भेजती है, जिसमें व्यथा के साथ-साथ एक आदर्श हिन्दू गृहिणी का तपोमय स्वरूप भी दिखाई पड़ता है।

निष्कर्ष- नागमती के विरह-वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता नागमती का अपने रानीपन को भूलकर सामान्य नारी की भाँति विरह-व्यथित होकर अपने हृदयोद्गारों को प्रकट करना है।

आचार्य शुक्ल के शब्दों में, '' जायसी ने स्त्री जाति की या कम से कम हिन्दू गृहिणी मात्र की सामान्य स्थिति के भीतर विप्रलम्भ श्रृंगार के अत्यन्त समुज्ज्वल रूप का विकास दिखाया गया है।''

कवि ने विरह के वेदनात्मक स्वरूप का चित्रण करते हुए संवेदनशीलता, विरहजन्य कृशता, करुणा और विश्वव्यापी भावुकता का भी स्वाभाविक, किन्तु मार्मिक चित्रण किया है।

इन सभी विशेषताओं के कारण जायसी को विरह-वर्णन का सम्राट और उनके विरह-वर्णन को हिन्दी साहित्य में अद्वितीय और अमूल्य माना गया है।

वस्तुतः व्यथा की सम्पूर्ण मधुरता, विरह की अपनी सारी मिठास, प्रणय के स्थायित्व और नारी की चरम भावुकता को साकार करने में जायसी को साहित्य में अन्यतम स्थान दिया गया है।

(1.)

चढ़ा आसाढ़ गगन घन गाजा। साजा विरह दुंद दल बाजा।।
घूम, घाम, घौरे घन धाए। सेत धजा बग पाँति देखाए।।
खड़क बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरसहिं घन घोरा।।
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी। कंत! उबारु मदन हौं घेरी।।
दादुर मोर कोकिला पीऊ। गिरै बीजु, घट रहै न जीऊ।।
पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह, मदिर को छावा।।
अद्रा लागि लाग भुई लेई। माहि बिनु पिउ को आदर देई?।।
जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौं औ गर्व।
कंत पियारा बाहिरै हम सुख भूला सर्व।।

सप्रंसग व्याख्या- प्रस्तुत पद्यावतरण जायसी कृत पद्मावत काव्य के 'नागमती वियोग खण्ड' से लिया गया है। इस अंश के अन्तर्गत कवि जायसी ने नागमती के वर्षाकालीन विरहोद्दीपन का चित्र खींचा है। कवि जायसी कह रहे हैं कि आषाढ मास आते ही आकाश में मेघ गूँजने लगे हैं। विरह ने द्वन्द्व युद्ध के लिए अपनी सेना सजा ली है।

घुमेले काले, धौले बादल सैनिकों की भाँति गगन में दौड़ने लगे हैं। बगुलों की पक्तियाँ श्वेत ध्वजा-सी दिखने लगी है। खड्ग बिजली के रूप में चारों ओर चमक रहे हैं तथा घोर घनयानी भयानक बूँदों के बाण बरस रहे हैं। आर्द्रा नक्षत्र लग गया है और भूमि बीज ग्रहण करने लगी है अर्थात् खेत बोये जाने लगे हैं।

इतना सब होने पर भी प्रिय के बिना मुझे कौन आदर दे सकता है? चारों ओर घटा झुक आई है। हे कंत! हे प्रियतम! मदन अर्थात् कामदेव ने मुझे चारों ओर से घेर लिया है। ऐसी स्थिति में मुझे आकर बचाओ। दादुर, मोर, कोयल और पपिहे पिउ-पिउ करके मुझे बेध रहे हैं। अब ऐसा प्रतीत होता है कि घट में प्राण नहीं रहेगा। पुष्य नक्षत्र सिर के ऊपर आ गया है, अब शीघ्र ही आने वाला है, परन्तु मैं बिना स्वामी की हूँ, मेरे मन्दिर- भवन को कौन छायेगा? जिनके घर पति हैं, वे सुखी हैं। उन्हीं को गौरव और गर्व है। मेरा प्यारा कंत तो परदेश में है, इसीलिए मैं सब सुख भूल गयी हूँ।

टिप्पणी-(1)

प्रस्तुत पद्यावतरण में असंगति अलंकार का सार्थक प्रयोग हुआ है। यहाँ पर उद्वेग, प्रलाप, जड़ता, व्याधि आदि काम दशाएँ व्यंजित हैं।

(2) आषाढ मास के कृष्ण पक्ष में आर्द्रा बरसात होती है। आर्द्रा में किसान भूमि में बीज बोने लगते हैं। आर्द्रा के बाद पुनर्वसु आषाढ शुक्ल में और उसके बाद पुष्य श्रावण कृष्ण पक्ष में आता है। पुष्य को लोक में चिरैया नक्षत्र कहते हैं। नागमती आषाढ़ शुक्ल में कह रही है कि पुष्य सिर पर आ गया है।

(2.)

कातिक सरद चंद उजियारी। जग सीतल, हौं बिरहै जारी।।
चौदह करा चाँद परगासा। जनहुँ जरै सब धरति अकासा।।
तन-मन सेज करै अगिदाहू। सब कहँ चंद, भयऊ मोहि राहू।।
अबहूँ निठुर! आउ एहि बारा। परब देवारी होइ संसारा।।
सखि झूमक गावै अंग मोरी। हौं झुराँव बिछुरी मारि जोरी।।
जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूजा। मो कहँ विरह, सवति दुख दूजा।।
सखि मानैं तिउहार सब, गाइ देवारी खेलि।
हौं का गावौं कंत बिनु, रही सार सिर मेलि।।

संप्रसग व्याख्या

प्रस्तुत पद्यावतरण जायसी कृत 'पद्मावत' काव्य के 'नागमती वियोग खण्ड' से लिया गया है। प्रस्तुत अंश के अन्तर्गत विरह-विदग्धा नायिका नागमती के हृद्योद्गारों को व्यक्त किया गया है।

कवि जायसी कह रहे है कि नागमती कह रही है कि कार्तिक मास आ गया है। चारों ओर शरद चन्द्र की चाँदनी छा रही है। सारा संसार शीतल और आनन्दित हो रहा है, किन्तु मैं विरहाग्नि में प्रज्ज्वलित हो रही हूँ।

चन्द्रमा अपनी चौदह अर्थात् सम्पूर्ण कलाओं के साथ प्रकाशित हो रहा है, परन्तु मुझे ऐसा लग रहा है कि सारी धरती ओर आकाश जल रहे हैं। शैया मेरे तन और मन दोनों का अग्निदाह कर रही है।

भाव यह है कि शैया पर जाते ही मेरे तन और मन धू-धू करके जलने लगते है। यह चन्द्रमा सबके लिए तो शीतलता प्रदान करने वाला है, परन्तु मेरे लिए ये राहु के समान दुखदायी हो रहा है। यद्यपि चारों ओर चाँदनी छिटकी हुई है, किन्तु प्रिय स्वामी घर पर न हो तो विरहिणी को सारा संसार अंधकारपूर्ण दिखलाई देने लगता है।

नागमती कह रही है कि ये निष्ठर! अब भी तुम इस समय आ जाओ। देखो तो सही, सारा संसार दीपावली का त्यौहार मना रहा है। सखियाँ अपने अंगों को

मरोड़-मरोड़ कर अर्थात् नृत्य करती हुई झूमक गीत गा रही हैं, परन्तु मैं सूखती जा रही हूँ। कारण यह कि मेरी जोड़ी बिछुड़ गई है, मेरा प्रिय मुझसे बिछुड़ गया है।

भाव यही है कि सारा संसार दीपावली की खुशियाँ मना रहा है और मैं विरह में तड़फ रही हूँ। जिस घर में प्रिय होता है, उस घर की रानी की सारी मनोकामनाएँ पूरी होती रहती हैं। मेरे लिए तो विरह और सौत-इन दोनों का दुगुना दुख है।

अर्थात् एक तो मैं विरह-दुख से व्याकुल हो रही हूँ और दूसरे सौतिया डाह के संताप से व्यथित हो रही हूँ। इस प्रकार मेरा दुख दुगुना हो उठा है।

अन्त में नागमती ने कहा कि मेरी सारी सखियाँ गा-बजाकर त्यौहार मना रही हैं, दीपावली के विविध खेल खेल रही हैं, परन्तु मैं स्वामी के बिना क्या गीत गाऊँ? मैं दुखी होकर अपने सिर में धूल डाल रही हूँ।

टिप्पणी-(1)

'जग सीतल हौं विरहै जारी' में विरोधाभास अलंकार का सौंदर्य देखते ही बनता है। 'रही छार सिर मेलि' में अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि हैं।

(2) विरह के ऐसे वर्णन अन्य सूफी कवियों ने भी अपने काव्यों में किए हैं, जो देखते ही बनते हैं। उदाहरणार्थ मंझन कृत 'मधुमालती' में आया यह वर्णन देखिए-

कातिक सरद सताई जारा।
अमी बुन्द बरखै विष धारा।।
मोहि तन विरह अगिनि परचारा।
सरद चाँद माँहि सेज अंगारा।।
सरद रैन तेहि सीतल जेहि पिय कंठ निवास।
सब कहै परब दिवारी मोहि कहँ भा वनवास।।

(3) इस पद्यावतरण में उद्वेग नामक विरहावस्था का व्यंजन हुआ है। आचार्य विश्वनाथ द्वारा विवेचित 'संताप' नामक विरह-दशा भी स्पष्ट है।

3.

भा वैसाख तपनि अति लागी। चोआ चीर चंदन भा आगी।।
सूरज जरत हिवंचल ताका। विरह बजागि सौंह रथ हाँका।।
जरत बजागिनि करु, पिउ छाँरा। आई बझाउँ, अँगारन्ह माहाँ।।
तोहि दरसन होइ सीतल नारी। आइ आगि तें करू फुलवारी।।

लागिउँ जरै, जरै जस भारू। फिरि-फिरि भूंजेसि, तजिउँ न बारू।।
सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइकि बिहराई।।
बिहरत हिया करहु पिउ! टेका। दीठि दवंगरा मरेवहु एका।।
कँवल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गएउ सुखाइ।
कबहुं बेलि फिरि पलुहै, जौ पिउ सींचौ आइ।।

संप्रसग व्याख्या

प्रस्तुत पद्यावतरण जायसी कृत पद्मावत काव्य के 'नागमती वियोग खण्ड' से लिया गया है। इस अंश के अन्तर्गत वैसाख की गर्मी का चित्रण किया गया है। कवि जायसी कह रहे हैं कि वैसाख मास आते ही गर्मी पड़नी शुरू हो जाती है। गर्मी विरहिणियों को बहुत दुखदायी होती है।

नागमती का विरह दुगुना हो जाता है। कवि जायसी ने इसी स्थिति का चित्रण इस अंश में किया है। कवि कह रहा है कि वैसाख का महीना आ गया है। अत्यन्त गर्मी पड़ने लग गयी है। यह इतनी अधिक हो गयी है कि रेशमी वस्त्र और चन्दन जैसे शीतल पदार्थ भी शरीर में अग्नि का-सा दाह उत्पन्न करते है। सूर्य जलता हुआ हिमालय की ओर जाना चाहता है। परन्तु उसने विरह की वज्राग्नि का अपना रथ मेरे सम्मुख ही हाँक दिया है।

इस विरह की वज्राग्नि के लिए छाया ही एकमात्र सहारा है। हे प्रिय! तो आओ और भुजते अंगारों में गड़ी (जलती हुई) मुझ नागमती को आकर बुझाओ (शीतल करो)। तुम्हारे दर्शनों से यह नारी शीतल हो सकती है। इसलिए तुम आकर अग्नि की जगह पर मेरे लिए पुष्पवाटिका का निर्माण करो।

मेरा शरीर भाड़ के समान जल रहा है। विरह रूपी तप्त बालू में मेरे प्राण बार-बार भुन रहे हैं। भाव यह है कि जैसे जलती बालू में दाने भूने जाते हैं और बाहर नहीं निकल पाते हैं, उसी प्रकार मेरे प्राण विरह में तपते और भुनते हुए शरीर छोड़कर निकल नहीं पाते हैं। सरोवर की तरह मेरा हृदय प्रति-दिन घटता जा रहा है।

एक दिन वह टुकड़े-टुकड़े होकर कट जायेगा। हृदय कट रहा है। हे प्रिय, तुम उसे सहारा दो और अपनी कृपा-दृष्टि रूपी दँवगरे से उसे एक में मिलाओ। अन्त में नागमती कहती है कि मानसरोवर में कमल खिला था वह बिना जल के सूख रहा है। हे प्रिय! यदि तुम आकर उसे अपने स्नेह के जल से सींचोगे तो उसमें फिर से नये पल्लव अंकुरित हो उठेंगे।

टिप्पणी

(1) प्रस्तुत पद्यावतरण के अन्तर्गत हेतूत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक और अप्रस्तुतप्रशंसा जैसे अलंकारों का प्रयोग किया गया है।

(2) यहाँ पर दुर्बलता नामक विरह अवस्था व्यंजित हुई है। जीवन के साम्य द्वारा वेदना की मार्मिक विवृत्ति हुई है। इस पद्यावतरण में आये 'सरवर.. ...एका' अंश में प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण द्रष्टव्य है।

(3) 'सूरज जरत हिवंचल ताका' से तात्पर्य है कि गर्मी से सूर्य जलने लगा है। उसने हिमालय की ओर जाना चाहा, परन्तु नागमती के शरीर में जलने वाली वज्राग्नि से ज्ञात होता है कि हिमालय की ओर न जाकर सूर्य ने अपना रथ नागमती की ओर हाँक दिया।

इसी से नागमती के शरीर में विरह की अग्नि सूर्य जैसी धधक रही है। सूर्य की गर्मी से त्रस्त होकर हिमालय जाना चाहता है, परन्तु वास्तविक बात यह है कि वह गर्मी में वहाँ जा नहीं पाता, अन्यथा ग्रीष्म ऋतु ही न हो।

4.

भई पुछार लीन्ह बनवासू। बैरिनि संवति दीन्ह चिलबाँसू।।
होइ घर बान विरह तनु लागा। जौ पिउ आवै उडहिं तौ कागा।।
हारिल भई पंथ मैं सेवा। अब तहँ पठवौं कौन परेवा।।
धौरी पंडुक कहु पिउ कंठ लवा। करै मेराव सोइ गौरवा।।
कोइल भई पुकारित रही। महरि पुकारै लेइ लेइ दही।।
पेड़ तिलोरी औ जल हंसा। हिरदय पैठि विरह कटनंसा।।
जेहि पंखी के निअर होइ, कहै विरह कै बात।
सोइ पंखी जाइ जरि, तखिर होइ निपात।।

संप्रसग व्याख्या

प्रस्तुत पद्यावतरण जायसी कृत पद्मावत काव्य के 'नागमती वियोग खण्ड' से लिया गया है। नागमती की वियोग वेदना जब चरम सीमा पर पहुँच जाती है तो वह अपने प्रिय का पता पूछने के लिए राजप्रसाद को छोड़कर जंगल में या खुले में आ जाती है। वन में उसे विभिन्न प्रकार के पक्षी मिलते हैं।

वह उन सभी के समक्ष अपना दुखड़ा रोती है और अपना 'रानीपन' भूल जाती है। इसी स्थिति को इस पद्यांश में चित्रित किया गया हैं। इस पंद्याश के दो अर्थ किए गए हैं।

पहला अर्थ पक्षियों के संदर्भ से है और दूसरा अर्थ नागमती के संदर्भ से। श्लेष की सहायता से किये गये ये दोनों अर्थ क्रमशः इस प्रकार हैं-

पक्षियों के संदर्भ से- कवि कह रहा है कि नागमती ने मोरनी बनकर वनवास लिया, किन्तु बैरिन सौत ने उसे फँसाने के लिए वहाँ भी फंदा लगा रखा है, जो विरह के तीक्ष्ण बाणों के समान उसके हृदय को व्यथित करता है।

वह कौए को देखकर कहती है कि हे कौए! यदि स्वामी आ रहे हों तो उड़ जा। हारिल पक्षी मार्ग में ही टिक कर बैठ गया है। अब मैं किस पक्षी को स्वामी के पास भेजूँ? हे धौरी! हे पंडुक! तुम प्रिय के नाम का उच्चारण करो।

जो जोड़े से रहता है, वह गोरैया पक्षी होता है। हे बया! तू जा। मैं प्यारे कंठलवा को लेती हूँ। कोयल बनकर मैं पुकारती रही। महरि (ग्वालिनि) 'लो दही, लो दही' पुकार रही है। पेड़ पर किलोरी तथा जल में हंस क्रीड़ा कर रहे हैं। नीलकंठ हृदय में घुसकर उड़ रहा है।

नागमती के संदर्भ से

कवि कह रहा है कि नागमती पति की खोज करने के लिए मोरनी के समान वन में जा पहुँची और वहीं विभिन्न पक्षियों से पूछने का प्रयत्न करती हुई भटकने लगी। यहाँ 'पुछार' शब्द पूछने वाली के अर्थ में आया है। नागमती ने अपने पति का पता पूछने वाली बनकर वनवास लिया, परन्तु वहाँ उसकी बैरिन सौत ने पक्षियों को फँसाने वाला फंदा लगा रखा है।

अतः कोई पक्षी उसके पास तक नहीं पहुँचता है। यह देखकर नागमती को अपने पति की याद सताने लगी और विरह उसके हृदय में तीखे बाण के समान वेदना उत्पन्न करने लगा। वह एक वृक्ष पर कौए को बैठा देखकर उससे कहती है कि हे कौए! यदि मेरे स्वामी आ रहे हैं तो उड़ जा।

(कौए से इस प्रकार कहने से यदि कौआ उड़ जाता है तो शुभ शकुन माना जाता है, जो प्रियतम के आने का सूचक माना जाता है।) नागमती कह रही है कि मैं मार्ग पर भटकती हुई बहुत थक गयी हूँ। अब मैं किस पक्षी को अपने पति के पास भेजूँ क्योंकि सौत के फंदे के भय से कोई भी पक्षी मेरे पास तक नहीं आता है।

मैं प्रियतम का नाम रटते-रटते श्वेत और पीली पड़ गयी हूँ। यदि प्रति के हृदय में मेरे प्रति क्रोध की भावना है अर्थात् वह मुझसे रुष्ट हैं तो मेरे लिए इस संसार में अब कोई स्थान नहीं रह गया है, जहाँ मैं रह सकूँ। अतः तू जाकर मेरे

पति से मेरा संदेश कहकर लौट आ और इस प्रकार मुझे अपने पति के कण्ठ से लगने का सौभाग्य प्रदान कर।

नागमती कहती है कि वही पक्षी गौरवशाली होगा जो पति से मेरा मिलन करायेगा। मैं पति का नाम पुकारते-पुकारते कोयल बन गयी हूँ। तू जाकर स्वामी से कहना कि तुम्हारी स्त्री बराबर 'बचाओ, बचाओ, विरह मुझे जलाये डाल रहा है' इस प्रकार निरन्तर पुकार रही है।

जब मैं वृक्ष पर तिलोरी को तथा जल में हंसों को क्रीड़ा करते हुए देखती हूँ तो मुझे अपने पति की स्मृति सताने लगती है और विरह मेरे हृदय में घुसकर मुझे नष्ट करने लगता है।

अन्त में वह कहती है कि मैं जिस पक्षी के पास जाकर अपनी विरह -व्यथा निवेदित करती हूँ वही पक्षी मेरी विहराग्नि की ज्वाला से जलकर भस्म हो जाता है और उस वृक्ष के सारे पत्र जल जाने के कारण वह पत्रहीन हो जाता है।

7

मलिक मोहम्मद जायसी के अनमोल दोहे

कँवल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गयउ सुखाइ।
सूखि बेलि पुनि पलुहै, जो पिय सींचौ आइ।1।

तिन्ह संतति उपराजा, भांतिहि भांति कुलीन।
हिंदू तुरुक दुबो भये, अपने- अपने दीन।2।

गगन हुता नहिं महि दुती, हुते चंद्र नहिं सूर।
ऐसइ अंधकूप महं, स्पत मुहम्मद नूर।3।

लागीं सब मिलि हेरै बूडि बूडि एक साथ।
कोइ उठी मोती लेइ, काहू घोंघा हाथ।4।

जिया जंतु जत सिरजा, सब महँ पवन सो पूरि।
पवनहि पवन जाइ मिलि, आगि,बाउ,जल धूरि।5।

अगिनि, पानि औ माटी, पवन फूल कर मूल।
उहई सिरजन कीन्हा, मारि कीन्ह अस्थूल।6।

माटी कर तन भाँडा, माटी महँ नव खंड।
जे केहु खेलै माटि कहँ, माटी प्रेम प्रचंड।7।

कहौं सो ज्ञान ककहरा, सब आखर महँ लेखि।
पंडित पढ़ अखरावटी, टूटा जोरेहु देखी।8।

सरग न,धरति न खंभमय, बरम्ह न बिसुन महेस।
बजर-बीज बीरौ अस, ओहि रंग, न भेस।9।

रकत माँसु भरि, पूरि हिय, पाँच भूत कै संग।
प्रेम-देस तेहि ऊपर बाज रूप औ रंग ।10।

8

सूफी मत और भारतीय वातावरण

सूफी संतों को इस्लाम प्रचारक कहा जाता है। उन्हें केवल इस्लाम का प्रचारक कहना ठीक नहीं है, जबकि वे लोग अत्यंत उदार दृष्टिकोण के संत थे। लोग उनसे प्रभावित होकर मुसलमान हो जाते थे। इन संतों में धार्मिक दृष्टिकोण बड़ा व्यापक और उदार था। वे इस्लाम को आवश्यक मानते और विचारधारा की स्वतंत्रता और धार्मिक विधि- विधानों के क्षेत्र में स्वतंत्रता के पक्षपाती थे।

सूफी मतों के सूफियों ने भारत की धरती पर जन्में धर्मों से बहुत कुछ लिया है। माला जपने की क्रिया उन्होंने बौद्ध धर्म से ली है। सूफियों में शहद खाने का निषेध और अहिंसा- पालन का सिद्धांत जैन धर्म से लिया। भारतीय योगमत का भी सूफियों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। आसन प्राणायाम आदि के लिए सूफी, योगियों के ऋणी है। सूफी अब सईद ने योगियों से ही ध्यान धारण की बातें सीखी थी।

ईश्वराराधन सूफियों का ध्येय था, प्रेम उनका मूल मंत्र था। एकेश्वरवाद में उनकी आस्था थी, उनके लिए हिंदू- मुस्लिम एक अल्लाह की ही संतान थे। भारतीय हिंदू में मूर्ति पूजा का प्रचार था। सूफी एवं मुसलमानों पर भी इसका प्रभाव पड़ा। वे समाधि- स्थानों की यात्रा करने लगे। इन स्थानों पर दीप चढ़ाने आदि के द्वारा उन्होंने भी पीरों की पूजा शुरू की। सूफियों ने भारतीय वातावरण

के अनुकूल केवल प्रचार ही नहीं किया था, वरन सुन्दर काव्य की भी रचना की। इन काव्य रचनाओं में प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में सूफी मत के सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ था। इनका उद्देश्य ईश्वरीय प्रेम के अतिरिक्त जन- समाज को प्रेम-पाश में आबद्ध करना भी था।

जायसी सहित सभी सूफी कवियों ने मुख और लेखनी से जो कुछ भी व्यक्त किया, वह जनता के आश्वासनार्थ सुधा- सिंधु ही सिद्ध हुआ और भारतीय साहित्य के लिए एक अनूठी निधि बन गया। इन्होंने तृषित मानव हृदय को शांति प्रदान की। अतः भारतीयों ने इन संतों में अपने परम हितैषी और शुभ चिंतक ही पाए। प्यासों को पानी देने वाला और भूखों को भोजन देने वाला सदैव सर्वमान्य होता है। इसी प्रकार ये संत भी लोगों के शीघ्र ही सम्माननीय हो गए। यही कारण था कि हिंदू- मुस्लिम दोनों पर इनका गहरा प्रभाव पड़ा। हिंदुओं ने तो अपने परम हितैषी सहायक ही पा लिए।

जायसी, मंझन, उस्मान आदि सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों की रचना द्वारा जिस पर महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर हमारा ध्यान दिलाया है। वह मानव जीवन के सौहार्द्रपूर्ण विकास के साथ संबंध रखता है और जो प्रधानतः उनके एकोदृष्टि और एकान्तनिष्ठ हो जाने पर ही संभव है। इनका कहना है कि यदि हमारी दृष्टि विशुद्ध प्रेम द्वारा प्रभावित हो सके और हम उसके आधार पर अपना संबंध परमात्मा से जोड़ लें, तो हमारी संकीर्णता सदा के लिए दूर हो जा सकती है। ऐसी दशा में हम न केवल सर्वत्र एक व्यापक विश्व- बंधुत्व की स्थापना कर सकते हैं, बल्कि अपने भीतर ही अपूर्ण शांति एवं परम आनंद का अनुभव कर सकते हैं।

इन प्रेमाख्यानों का मुख्य संदेश मानव हृदय की विशालता प्रदान करना तथा उसे सर्वथा परिष्कृत करना एवं अपने भीतर दृढ़ता और एकांतनिष्ठा की शक्ति- भक्ति लाना है। सूफियों के इस प्रेमाघाति जीवनादर्श के मूल में उनका यह सिद्धांत भी काम करता है कि वास्तव में ईश्वरीय प्रेम तथा लौकिक प्रेम में कोई अंतर नहीं है। इश्कमिजाजी तभी तक संदोष है, जब तक उसमें स्वार्थ परायणता की संकीर्णता आ जाए और आत्मत्याग की उदारता लक्षित न हो। व्यक्तिगत सुख- दुख अथवा लाभ- हानि के स्तर से ऊपर उठते ही वह एक अपूर्व रंग पकड़ लेता है और फिर क्रमशः उस रूप में आ जाता है, जिसको इश्क हकीकी के नाम से जाना जाता है। कवियों ने अपनी इन रचनाओं में ऐसा कभी कोई संकेत नहीं छोड़ा, जिससे उनका कोई सांप्रदायिक अर्थ लगाया जा सके।

जायसी इस्लाम के अनुयायी थे, मगर उन पर सूफी संत होने के कारण इस्लाम और हिंदू भावना से वे ऊँचे उठे हुए थे।

तिन्ह संतति उपराजा, भांतिहि भांति कुलीन
हिंदू तुरुक दुबो भये, अपने- अपने दीन।।
मातु के रक्त पिता कै बिंदू।
अपने दुबौ तुरुक और हिंदू।।

जायसी ने कई स्थलों पर साधना और धर्म के पक्षों में वाह्याडम्बर का विरोध किया है-

का भा परगट क्या पखारें।
का भा भगति भुइ सिर मारे।।
का भा जय भभूत चढ़ाऐ।
का भा गेरु कापरि लाए।।
का भा भेस दिगंबर छांटे।
का भा आपू उलटि गए काँटे।।
जो मेखहि तजि लोन तू गहा।
ना बाग टहैं भगति बे चाहा।।
बर पीपर सिर जटा न थोरे।
अइस भेसं की पावसि भोरे।।
जब लगि विरह न होई तन, हिए न उपजइ पेम।
तब लगि हाथ न आव तप करम धरम सतनेम।।
यह तन अल्लाह मिंया सो लाइ।
जिदि की षाई तिहि की शाई।
बात बहुत जो कहे बनाई।
छूछ पछौर उड़ि- उड़ि जाए।।
जीवन थोर बहुत उपहाँस।
अधरी ठकुरी पीठ बतासे।।
तोरा अन्याउ होसि का क्रोधी।
बेल न कूदत गोने कूदी।।
पुन्य पाप ते कोउ तरा।
भूखी डाइन तामस भरा।।

पद्मावत में जायसी द्वारा प्रेमाख्यानों का उल्लेख

बहुतन्ह ऐस जीऊ पर खेला।
तू जोगी केहि माहं अकेला।।
विक्रम धसा प्रेम के बारा।
सपनावति कहाँ गएउ पतारा।।
सुदेवच्छ मुगुधावति लागी।
कंकनपूरि होई गा बैरागी।।
राजकुँवर कंचनपुर गएऊ।
मिरगावति कहं जोगी भएऊ।।
साधा कुवँर मनोहर जोगू।
मधुमालति कहं कीन्ह वियोगू।।

9

भक्ति काल

भक्ति काल अपना एक अहम और महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आदिकाल के बाद आये इस युग को पूर्व मध्यकाल भी कहा जाता है, जिसकी समयावधि संवत् 1325 ई. से संवत् 1650 ई. तक की मानी जाती है। यह हिंदी साहित्य - धार्मिक साहित्य और लौकिक साहित्य) का श्रेष्ठ युग है। जिसको **जॉर्ज ग्रियर्सन** ने स्वर्णकाल, **श्यामसुन्दर दास** ने स्वर्णयुग, **आचार्य राम चंद्र शुक्ल** ने भक्ति काल एवं **हजारी प्रसाद द्विवेदी** ने लोक जागरण कहा। सम्पूर्ण साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इसी युग में प्राप्त होती हैं।

दक्षिण में आलवार बंधु नाम से कई प्रख्यात भक्त हुए हैं। इनमें से कई तथाकथित नीची जातियों के भी थे। वे बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे, परंतु अनुभवी थे। आलवारों के पश्चात् दक्षिण में आचार्यों की एक परंपरा चली, जिसमें रामानुजाचार्य प्रमुख थे।

रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए। उनका व्यक्तित्त्व असाधारण था। वे उस समय के सबसे बड़े आचार्य थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊंच-नीच का भेद तोड़ दिया। सभी जातियों के अधिकारी व्यक्तियों को आपने शिष्य बनाया। उस समय का सूत्र हो गया:

जाति-पांति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई॥

रामानंद ने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर बल दिया। रामानंद ने और उनकी शिष्य-मंडली ने दक्षिण की भक्तिगंगा का उत्तर में प्रवाह किया। समस्त उत्तर-भारत इस पुण्य-प्रवाह में बहने लगा। भारत भर में उस समय पहुंचे हुए संत और महात्मा भक्तों का आविर्भाव हुआ।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टि-मार्ग की स्थापना की और विष्णु के कृष्णावतार की उपासना करने का प्रचार किया। उनके द्वारा जिस लीला-गान का उपदेश हुआ, उसने देशभर को प्रभावित किया। अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवियों ने उनके उपदेशों को मधुर कविता में प्रतिबिंबित किया।

इसके उपरांत माध्व तथा निंबार्क संप्रदायों का भी जन-समाज पर प्रभाव पड़ा है। साधना-क्षेत्र में दो अन्य संप्रदाय भी उस समय विद्यमान थे। नाथों के योग-मार्ग से प्रभावित संत संप्रदाय चला, जिसमें प्रमुख व्यक्तित्त्व संत कबीरदास का है। मुसलमान कवियों का सूफीवाद हिंदुओं के विशिष्टाद्वैतवाद से बहुत भिन्न नहीं है। कुछ भावुक मुसलमान कवियों द्वारा सूफीवाद से रंगी हुई उत्तम रचनाएं लिखी गई।

संक्षेप में भक्ति-युग की चार प्रमुख काव्य-धाराएं मिलती हैं–

सगुण भक्ति

रामाश्रयी शाखा,

कृष्णाश्रयी शाखा।

निर्गुण भक्ति

ज्ञानाश्रयी शाखा,

प्रेमाश्रयी शाखा।

हिंदी साहित्य का भक्तिकाल1375 वि. से 1700 वि. तक माना जाता है। यह युग भक्तिकाल के नाम से प्रख्यात है। यह हिंदी साहित्य का श्रेष्ठ युग है। समस्त हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इस युग में प्राप्त होती हैं।

रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए। उनका व्यक्तित्त्व असाधारण था। वे उस समय के सबसे बड़े आचार्य थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊंच-नीच का भेद तोड़ दिया। सभी जातियों के अधिकारी व्यक्तियों को आपने शिष्य बनाया। उस समय का सूत्र हो गया: जाति-पांति पूछे नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।।

इसके उपरांत माध्व तथा निंबार्क संप्रदायों का भी जन-समाज पर प्रभाव पड़ा है। साधना-क्षेत्र में दो अन्य संप्रदाय भी उस समय विद्यमान थे। नाथों के योग-मार्ग से प्रभावित संत संप्रदाय चला, जिसमें प्रमुख व्यक्तित्त्व संत कबीरदास का है। मुसलमान कवियों का सूफीवाद हिंदुओं के विशिष्टाद्वैतवाद से बहुत भिन्न नहीं है। कुछ भावुक मुसलमान कवियों द्वारा सूफीवाद से रंगी हुई उत्तम रचनाएं लिखी गईं। संक्षेप में भक्ति-युग की चार प्रमुख काव्य-धाराएं मिलती हैं—ज्ञानाश्रयी शाखा, प्रेमाश्रयी शाखा,,, कृष्णाश्रयी शाखा और रामाश्रयी शाखा, प्रथम दोनों धाराएं निर्गुण मत के अंतर्गत आती हैं, शेष दोनों सगुण मत के।

संत कवि

निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख संत कवियों में बीर, कमाल, रैदास या रविदास, धर्मदास, गुरू नानक, दादूदयाल, सुंदरदास, रज्जब, मलूकदास, अक्षर अनन्य, जंभनाथ, सिंगा जी, हरिदास निरंजनी।

परिचय

तेरहवीं सदी तक धर्म के क्षेत्र में बड़ी अस्तव्यस्तता आ गई। जनता में सिद्धों और योगियों आदि द्वारा प्रचलित अंधविश्वास फैल रहे थे, शास्त्रज्ञानसंपन्न वर्ग में भी रूढ़ियों और आडंबर की प्रधानता हो चली थी। मायावाद के प्रभाव से लोकविमुखता और निष्क्रियता के भाव समाज में पनपने लगे थे। ऐसे समय में भक्तिआंदोलन के रूप में ऐसा भारतव्यापी विशाल सांस्कृतिक आंदोलन उठा, जिसने समाज में उत्कर्षविधायक सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की।

भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण के आलवार संतों द्वारा दसवीं सदी के लगभग हुआ। वहाँ शंकराचार्य के अद्वैतमत और मायावाद के विरोध में चार वैष्णव संप्रदाय खड़े हुए। इन चारों संप्रदायों ने उत्तर भारत में विष्णु के अवतारों का प्रचार-प्रसार किया। इनमें से एक के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, जिनकी शिष्यपरंपरा में आनेवाले रामानंद ने (पंद्रहवीं सदी) उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामानंद के राम ब्रह्म के स्थानापन्न थे, जो राक्षसों का विनाश और अपनी लीला का विस्तार करने के लिए संसार में अवतीर्ण होते हैं। भक्ति के क्षेत्र में रामानंद ने ऊँचनीच का भेदभाव मिटाने पर विशेष बल दिया। राम के सगुण और निर्गुण दो रूपों को माननेवाले दो भक्तों - कबीर और तुलसी को

इन्होंने प्रभावित किया। विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैत मत का आधार लेकर इसी समय बल्लभाचार्य ने अपना पुष्टिमार्ग चलाया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पूरे देश में पुराणसम्मत कृष्णचरित् के आधार पर कई संप्रदाय प्रतिष्ठित हुए, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली वल्लभ का पुष्टिमार्ग था। उन्होंने शांकर मत के विरुद्ध ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक कहा। उनके मत से यह संसार मिथ्या या माया का प्रसार नहीं है बल्कि ब्रह्म का ही प्रसार है, अतः सत्य है। उन्होंने कृष्ण को ब्रह्म का अवतार माना और उसकी प्राप्ति के लिए भक्त का पूर्ण आत्मसमर्पण आवश्यक बतलाया। भगवान् के अनुग्रह या पुष्टि के द्वारा ही भक्ति सुलभ हो सकती है। इस संप्रदाय में उपासना के लिए गोपीजनवल्लभ, लीलापुरुषोत्तम कृष्ण का मधुर रूप स्वीकृत हुआ। इस प्रकार उत्तर भारत में विष्णु के राम और कृष्ण अवतारों की प्रतिष्ठा हुई।

यद्यपि भक्ति का स्रोत दक्षिण से आया तथापि उत्तर भारत की नई परिस्थितियों में उसने एक नया रूप भी ग्रहण किया। मुसलमानों के इस देश में बस जाने पर एक ऐसे भक्तिमार्ग की आवश्यकता थी जो हिंदू और मुसलमान दोनों को ग्राह्य हो। इसके अतिरिक्त निम्न वर्ग के लिए भी अधिक मान्य मत वही हो सकता था जो उन्हीं के वर्ग के पुरुष द्वारा प्रवर्तित हो। महाराष्ट्र के संत नामदेव ने 14वीं शताब्दी में इसी प्रकार के भक्तिमत का सामान्य जनता में प्रचार किया, जिसमें भगवान् के सगुण और निर्गुण दोनों रूप गृहित थे। कबीर के संतमत के ये पूर्वपुरुष हैं। दूसरी ओर सूफी कवियों ने हिंदुओं की लोककथाओं का आधार लेकर ईश्वर के प्रेममय रूप का प्रचार किया।

इस प्रकार इन विभिन्न मतों का आधार लेकर हिंदी में निर्गुण और सगुण के नाम से भक्तिकाव्य की दो शाखाएँ साथ-साथ चलीं। निर्गुणमत के दो उपविभाग हुए – ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। पहले के प्रतिनिधि कबीर और दूसरे के जायसी हैं। सगुणमत भी दो उपधाराओं में प्रवाहित हुआ – रामभक्ति और कृष्णभक्ति। पहले के प्रतिनिधि तुलसी हैं और दूसरे के सूरदास।

भक्तिकाव्य की इन विभिन्न प्रणलियों की अपनी अलग-अलग विशेषताएँ हैं पर कुछ आधारभूत बातों का सन्निवेश सब में है। प्रेम की सामान्य भूमिका सभी ने स्वीकार की। भक्तिभाव के स्तर पर मनुष्यमात्र की समानता सबको मान्य है। प्रेम और करुणा से युक्त अवतार की कल्पना तो सगुण भक्तों का आधार ही है पर निर्गुणोपासक कबीर भी अपने राम को प्रिय, पिता और स्वामी आदि के रूप में स्मरण करते हैं। ज्ञान की तुलना में सभी भक्तों ने भक्तिभाव

को गौरव दिया है। सभी भक्त कवियों ने लोकभाषा का माध्यम स्वीकार किया है।

ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर पर तात्कालिक विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक मतों का सम्मिलित प्रभाव है। उनकी रचनाओं में धर्मसुधारक और समाजसुधारक का रूप विशेष प्रखर है। उन्होंने आचरण की शुद्धता पर बल दिया। बाह्याडंबर, रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर उन्होंने तीव्र कशाघात किया। मनुष्य की क्षमता का उद्घोष कर उन्होंने निम्नश्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया। इस शाखा के अन्य कवि रैदास, दादू हैं।

अपनी व्यक्तिगत धार्मिक अनुभूति और सामाजिक आलोचना द्वारा कबीर आदि संतों ने जनता को विचार के स्तर पर प्रभावित किया था। सूफी संतों ने अपने प्रेमाख्यानों द्वारा लोकमानस को भावना के स्तर पर प्रभावित करने का प्रयत्न किया। ज्ञानमार्गी संत कवियों की वाणी मुक्तकबद्ध है, प्रेममार्गी कवियों की प्रेमभावना लोकप्रचलित आख्यानों का आधार लेकर प्रबंधकाव्य के रूप में स्थापित हुई है। सूफी ईश्वर को अनंत प्रेम और सौंदर्य का भंडार मानते हैं। उनके अनुसार ईश्वर को जीव प्रेम के मार्ग से ही उपलब्ध कर सकता है। साधाना के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को वह गुरु या पीर की सहायता से साहसपूर्वक पार करके अपने परमप्रिय का साक्षात्कार करता है। सूफियों ने चाहे अपने मत के प्रचार के लिए अपने कथाकाव्य की रचना की हो पर साहित्यिक दृष्टि से उनका मूल्य इसलिए है कि उसमें प्रेम और उससे प्रेरित अन्य संवेगों की व्यंजना सहजबोध्य लौकिक भूमि पर हुई है। उनके द्वारा व्यंजित प्रेम ईश्वरोन्मुख है पर सामान्यत: यह प्रेम लौकिक भूमि पर ही संक्रमण करता है। परमप्रिय के सौंदर्य, प्रेमक्रीड़ा और प्रेमी के विरहोद्वेग आदि का वर्णन उन्होंने इतनी तन्मयता से किया है और उनके काव्य का मानवीय आधार इतना पुष्ट है कि आध्यात्मिक प्रतीकों और रूपकों के बावजूद उनकी रचनाएँ प्रेमसमर्पित कथाकाव्य की श्रेष्ठ कृतियाँ बन गई हैं। उनके काव्य का पूरा वातावरण लोकजीवन का और गार्हस्थिक है। प्रेमाख्यानकों की शैली फारसी के मसनवी काव्य जैसी है।

इस धारा के सर्वप्रमुख कवि जायसी हैं जिनका 'पद्मावत' अपनी मार्मिक प्रेमव्यंजना, कथारस और सहज कलाविन्यास के कारण विशेष प्रशंसित हुआ है। इनकी अन्य रचनाओं में 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' आदि हैं, जिनमें सूफी संप्रदायसंगत बातें हैं1 इस धारा के अन्य कवि हैं कुतबन, मंझन, उस्मान, शेख, नबी और नूरमुहम्मद आदि।

ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों में विचार की प्रधानता है तो सूफियों की रचनाओं में प्रेम का एकांतिक रूप व्यक्त हुआ है। सगुण धारा के कवियों ने विचारात्मक शुष्कता और प्रेम की एकांगिता दूरकर जीवन के सहज उल्लासमय और व्यापक रूप की प्रतिष्ठा की। कृष्णभक्तिशाखा के कवियों ने आनंदस्वरूप लीलापुरुषोत्तम कृष्ण के मधुर रूप की प्रतिष्ठा कर जीवन के प्रति गहन राग को स्फूर्त किया। इन कवियों में सूरसागर के रचयिता महाकवि सूरदास श्रेष्ठतम हैं जिन्होंने कृष्ण के मधुर व्यक्तित्त्व का अनेक मार्मिक रूपों में साक्षात्कार किया। ये प्रेम और सौंदर्य के निसर्गसिद्ध गायक हैं। कृष्ण के बालरूप की जैसी विमोहक, सजीव और बहुविध कल्पना इन्होंने की है वह अपना सानी नहीं रखती। कृष्ण और गोपियों के स्वच्छंद प्रेमप्रसंगों द्वारा सूर ने मानवीय राग का बड़ा ही निश्छल और सहज रूप उद्घाटित किया है। यह प्रेम अपने सहज परिवेश में सहयोगी भाववृत्तियों से संपृक्त होकर विशेष अर्थवान हो गया है। कृष्ण के प्रति उनका संबंध मुख्यत: सख्यभाव का है। आराध्य के प्रति उनका सहज समर्पण भावना की गहरी से गहरी भूमिकाओं को स्पर्श करनेवाला है। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वल्लभ के पुत्र बिट्ठलनाथ ने कृष्णलीलागान के लिए अष्टछाप के नाम से आठ कवियों का निर्वाचन किया था। सूरदास इस मंडल के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। अन्य विशिष्ट कवि नंददास और परमानंददास हैं। नंददास की कलाचेतना अपेक्षाकृत विशेष मुखर है।

मध्ययुग में कृष्णभक्ति का व्यापक प्रचार हुआ और वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अतिरिक्त अन्य भी कई संप्रदाय स्थापित हुए, जिन्होंने कृष्णकाव्य को प्रभावित किया। हितहरिवंश (राधावल्लभी संप्र.), हरिदास (टट्टी संप्र.), गदाधर भट्ट और सूरदास मदनमोहन (गौड़ीय संप्र.) आदि अनेक कवियों ने विभिन्न मतों के अनुसार कृष्णप्रेम की मार्मिक कल्पनाएँ कीं। मीरा की भक्ति दांपत्यभाव की थी जो अपने स्वतरूस्फूर्त कोमल और करुण प्रेमसंगीत से आंदोतिल करती हैं। नरोत्तमदास, रसखान, सेनापति आदि इस धारा के अन्य अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए जिन्होंने हिंदी काव्य को समृद्ध किया। यह सारा कृष्णकाव्य मुक्तक या कथाश्रित मुक्तक है। संगीतात्मकता इसका एक विशिष्ट गुण है।

कृष्णकाव्य ने भगवान के मधुर रूप का उद्घाटन किया पर उसमें जीवन की अनेकरूपता नहीं थी, जीवन की विविधता और विस्तार की मार्मिक योजना रामकाव्य में हुई। कृष्णभक्तिकाव्य में जीवन के माधुर्य पक्ष का स्फूर्तिप्रद संगीत

था, रामकाव्य में जीवन का नीतिपक्ष और समाजबोध अधिक मुखरित हुआ। एक ने स्वच्छंद रागतत्त्व को महत्व दिया तो दूसरे ने मर्यादित लोकचेतना पर विशेष बल दिया। एक ने भगवान की लोकरंजनकारी सौंदर्यप्रतिमा का संगठन किया तो दूसरे ने उसके शक्ति, शील और सौंदर्यमय लोकमंगलकारी रूप को प्रकाशित किया। रामकाव्य का सर्वोत्कृष्ट वैभव 'रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदास के काव्य में प्रकट हुआ जो विद्याविद् ग्रियर्सन की दृष्टि में बुद्धदेव के बाद के सबसे बड़े जननायक थे। पर काव्य की दृष्टि से तुलसी का महत्व भगवान के एक ऐसे रूप की परिकल्पना में है, जो मानवीय सामर्थ्य और औदात्य की उच्चतम भूमि पर अधिष्ठित है। तुलसी के काव्य की एक बड़ी विशेषता उनकी बहुमुखी समन्वयभावना है, जो धर्म, समाज और साहित्य सभी क्षेत्रों में सक्रिय है। उनका काव्य लोकोन्मुख है। उसमें जीवन की विस्तीर्णता के साथ गहराई भी है। उनका महाकाव्य रामचरितमानस राम के संपूर्ण जीवन के माध्यम से व्यक्ति और लोकजीवन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करता है। उसमें भगवान राम के लोकमंगलकारी रूप की प्रतिष्ठा है। उनका साहित्य सामाजिक और वैयक्तिक कर्तव्य के उच्च आदर्शों में आस्था दृढ़ करनेवाला है। तुलसी की 'विनयपत्रिका' में आराध्य के प्रति, जो कवि के आदर्शों का सजीव प्रतिरूप है, उनका निरंतर और निश्छल समर्पणभाव, काव्यात्मक आत्माभिव्यक्ति का उत्कृष्ट दृष्टांत है। काव्याभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों पर उनका समान अधिकार है। अपने समय में प्रचलित सभी काव्यशैलियों का उन्होंने सफल प्रयोग किया। प्रबंध और मुक्तक की साहित्यिक शैलियों के अतिरिक्त लोकप्रचलित अवधी और ब्रजभाषा दोनों के व्यवहार में वे समान रूप से समर्थ हैं। तुलसी के अतिरिक्त रामकाव्य के अन्य रचयिताओं में अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान और हृदयराम आदि उल्लेख्य हैं।

आज की दृष्टि से इस संपूर्ण भक्तिकाव्य का महत्व उसक धार्मिकता से अधिक लोकजीवनगत मानवीय अनुभूतियों और भावों के कारण है। इसी विचार से भक्तिकाल को हिंदी काव्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

कृष्णाश्रयी शाखा

इस शाखा का सर्वाधिक प्रचार हुआ है। विभिन्न संप्रदायों के अंतर्गत उच्च कोटि के कवि हुए हैं। इनमें वल्लभाचार्य के पुष्टि-संप्रदाय के अंतर्गत अष्टछाप के सूरदास, कुम्भनदास, रसखान जैसे महान कवि हुए हैं। वात्सल्य एवं शृंगार

के सर्वोत्तम भक्त-कवि सूरदास के पदों का परवर्ती हिंदी साहित्य पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। इस शाखा के कवियों ने प्राय: मुक्तक काव्य ही लिखा है। भगवान श्रीकृष्ण का बाल एवं किशोर रूप ही इन कवियों को आकर्षित कर पाया है, इसलिए इनके काव्यों में श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य की अपेक्षा माधुर्य का ही प्राधान्य रहा है। प्राय: सब कवि गायक थे इसलिए कविता और संगीत का अद्‌भुत सुंदर समन्वय इन कवियों की रचनाओं में मिलता है। गीति-काव्य की जो परंपरा जयदेव और विद्यापति द्वारा पल्लवित हुई थी उसका चरम-विकास इन कवियों द्वारा हुआ है। नर-नारी की साधारण प्रेम-लीलाओं को राधा-कृष्ण की अलौकिक प्रेमलीला द्वारा व्यंजित करके उन्होंने जन-मानस को रसाप्लावित कर दिया। आनंद की एक लहर देश भर में दौड़ गई। इस शाखा के प्रमुख कवि थे सूरदास, नंददास, मीरा बाई, हितहरिवंश, हरिदास, रसखान, नरोत्तमदास वगैरह। रहीम भी इसी समय हुए।

कृष्ण-काव्य-धारा की विशेषताएँ

कृष्ण-काव्य-धारा के मुख्य प्रवर्तक हैं- श्री वल्लभाचार्य। उन्होंने निम्बार्क, मध्व और विष्णुस्वामी के आदर्शों को सामने रखकर श्रीकृष्ण का प्रचार किया। श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रचारित पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण-भक्ति-साहित्य की रचना की। वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग का प्रचार-प्रसार किया। जिसका अर्थ है- भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति से उनकी कृपा और अनुग्रह की प्राप्ति करना।

कृष्ण-काव्य-धारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. श्रीकृष्ण-साहित्य का मुख्य विषय कृष्ण की लीलाओं का गान करना है। वल्लभाचार्य के सिद्धांतो से प्रभावित होकर इस शाखा के कवियों ने कृष्ण की बाल-लीलाओं का ही अधिक वर्ण किया है। सूरदास इसमें प्रमुख है।
2. इस शाखा में वात्सल्य एवं माधुर्य भाव का ही प्राधान्य है। वात्सल्य भाव के अंतर्गत कृष्ण की बाल-लीलाओं, चेष्टाओं तथा माँ यशोदा के हृदय की झाँकी मिलती है। माधुर्य भाव के अंतर्गत गोपी-लीला मुख्य है। सूरदास के बारे में **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने लिखा है- वात्सल्य के क्षेत्र में जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया, इतना किसी ओर कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का तो वे कोना-कोना झाँक आये।

3. इस धारा के कवियों ने भगवान कृष्ण की उपासना माधुर्य एवं सख्य भाव से की है। इसीलिए इसमें मर्यादा का चित्रण नहीं मिलता।
4. श्रीकृष्ण काव्य में मुक्त रचनाएँ ही अधिक पाई जाती हैं। काव्य-रचना के अधिकांशत: उन्होंने पद ही चुने हैं।
5. इस काव्य में गीति-काव्य की मनोहारिणी छटा है। इसका कारण है- कृष्ण-काव्य की संगीतात्मक्ता। कृष्ण-काव्य में राग-रागिनियों का सुंदर उपयोग हुआ है।
6. श्रीकृष्ण काव्य में विषय की एकता होने के कारण भावों में अधिकतर एकरूपता पाई जाती है।
7. श्रीकृष्ण को भगवान मानकर पदों की विनयावली द्वारा पूजा जाने के कारण इसमें भावुकता की तीव्रता अधिक पाई जाती है।
8. इस काव्य-धारा में उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
9. कृष्ण-काव्य-धारा की भाषा ब्रज है। ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली का प्रयोग इसमें हुआ है। यह मधुर और सरस है।
10. इस काव्य में रसमयी उक्तियों के लिए तथा साकार ईश्वर के प्रतिपादन के लिए भ्रमरगीत लिखने की परंपरा प्राप्त होती है।
11. श्रीकृष्ण-काव्य स्वतंत्र प्रेम-प्रधान काव्य है। इन्होंने प्रेमलक्षणा भक्ति को अपनाया है। इसलिए इसमें मर्यादा की अवहेलना की गई है।
12. कृष्ण-काव्य व्यंग्यात्मक है। इसमें उपालंभ की प्रधानता है। सूर का भ्रमरगीत इसका सुंदर उदाहरण है।
13. श्रीकृष्ण काव्य में लोक-जीवन के प्रति उपेक्षा की भावना पाई जाती है। इसका मुख्य कारण है- कृष्ण के लोकरंजक रूप की प्रधानता।
14. श्री कृष्ण-काव्य-धारा में ज्ञान और कर्म के स्थान पर भक्ति को प्रधानता दी गई है। इसमें आत्म-चिंतन की अपेक्षा आत्म-समर्पण का महत्व है।
15. प्रकृति-वर्णन भी इस धारा में मिलता है। ग्राम्य-प्रकृति के सुंदर चित्र इसमें हैं।

रामाश्रयी शाखा

कृष्णभक्ति शाखा के अंतर्गत लीला-पुरुषोत्तम का गान रहा तो रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास ने मर्यादा-पुरुषोत्तम का ध्यान करना चाहा।

इसलिए आपने रामचंद्र को आराध्य माना और 'रामचरित मानस' द्वारा राम-कथा को घर-घर में पहुंचा दिया। तुलसीदास हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। समन्वयवादी तुलसीदास में लोकनायक के सब गुण मौजूद थे। आपकी पावन और मधुर वाणी ने जनता के तमाम स्तरों को राममय कर दिया। उस समय प्रचलित तमाम भाषाओं और छंदों में आपने रामकथा लिख दी। जन-समाज के उत्थान में आपने सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस शाखा में अन्य कोई कवि तुलसीदास के समान उल्लेखनीय नहीं है तथापि अग्रदास, नाभादास तथा प्राण चन्द चौहान भी इस श्रेणी में आते हैं।

रामभक्ति शाखा की प्रवृत्तियाँ रामकाव्य धारा का प्रवर्तन वैष्णव संप्रदाय के स्वामी रामानंद से स्वीकार किया जा सकता है। यद्यपि रामकाव्य का आधार संस्कृत साहित्य में उपलब्ध राम-काव्य और नाटक रहे हैं। इस काव्य धारा के अवलोकन से इसकी निम्न विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं –

राम का स्वरूप–रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में श्री रामानंद के अनुयायी सभी रामभक्त कवि विष्णु के अवतार दशरथ-पुत्र राम के उपासक हैं। अवतारवाद में विश्वास है। उनके राम परब्रह्म स्वरूप हैं। उनमें शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय है। सौंदर्य में वे त्रिभुवन को लजावन हारे हैं। शक्ति से वे दुष्टों का दमन और भक्तों की रक्षा करते हैं तथा गुणों से संसार को आचार की शिक्षा देते हैं। वे मर्यादापुरुषोत्तम और लोकरक्षक हैं। भक्ति का स्वरूप–इनकी भक्ति में सेवक-सेव्य भाव है। वे दास्य भाव से राम की आराधना करते हैं। वे स्वयं को क्षुद्रातिक्षुद्र तथा भगवान को महान बतलाते हैं। तुलसीदास ने लिखा है–सेवक-सेव्य भाव बिन भव न तरिय उरगारि। राम-काव्य में ज्ञान, कर्म और भक्ति की पृथक-पृथक महत्ता स्पष्ट करते हुए भक्ति को उत्कृष्ट बताया गया है। तुलसी दास ने भक्ति और ज्ञान में अभेद माना है–भगतहिं ज्ञानहिं नहिं कुछ भेदा। यद्यपि वे ज्ञान को कठिन मार्ग तथा भक्ति को सरल और सहज मार्ग स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त तुलसी की भक्ति का रूप वैधी रहा है,वह वेदशास्त्र की मर्यादा के अनुकूल है। लोक-मंगल की भावना–रामभक्ति साहित्य में राम के लोक-रक्षक रूप की स्थापना हुई है। तुलसी के राम मर्यादापुरुषोत्तम तथा आदर्शों के संस्थापक हैं। इस काव्य धारा में आदर्श पात्रों की सर्जना हुई है। राम आदर्श पुत्र और आदर्श राजा हैं, सीता आदर्श पत्नी हैं तो भरत और लक्ष्मण आदर्श भाई हैं। कौशल्या आदर्श माता है, हनुमान आदर्श सेवक हैं। इस प्रकार रामचरितमानस में तुलसी ने आदर्श गृहस्थ, आदर्श समाज और आदर्श राज्य

की कल्पना की है। आदर्श की प्रतिष्ठा से ही तुलसी लोकनायक कवि बन गए हैं और उनका काव्य लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत है।

समन्वय भावना–तुलसी का मानस समन्वय की विराट चेष्टा है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में - उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय रामचरितमानस में शुरू से आखिर तक समन्वय का काव्य है। हम कह सकते हैं कि तुलसी आदि रामभक्त कवियों ने समाज, भक्ति और साहित्य सभी क्षेत्रों में समन्वयवाद का प्रचार किया है। राम भक्त कवियों की भारतीय संस्कृति में पूर्ण आस्था रही। पौराणिकता इनका आधार है और वर्णाश्रम व्यवस्था के पोषक हैं। लोकहित के साथ-साथ इनकी भक्ति स्वांतः सुखाय थी। सामाजिक तत्त्व की प्रधानता रही।

काव्य शैलियाँ–रामकाव्य में काव्य की प्रायः सभी शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। तुलसीदास ने अपने युग की प्रायः सभी काव्य-शैलियों को अपनाया है। वीरगाथाकाल की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूर की गीतिपद्धति, गंग आदि भाट कवियों की कवित्त-सवैया पद्धति, जायसी की दोहा पद्धति, सभी का सफलतापूर्वक प्रयोग इनकी रचनाओं में मिलता है। रामायण महानाटक (प्राणचंद चौहान) और हनुमननाटक (हृदयराम) में संवाद पद्धति और केशव की रामचंद्रिका में रीति-पद्धति का अनुसरण है। रस–रामकाव्य में नव रसों का प्रयोग है। राम का जीवन इतना विस्तृत व विविध है कि उसमें प्रायः सभी रसों की अभिव्यक्ति सहज ही हो जाती है। तुलसी के मानस एवं केशव की रामचंद्रिका में सभी रस देखे जा सकते हैं। रामभक्ति के रसिक संप्रदाय के काव्य में शृंगार रस को प्रमुखता मिली है। मुख्य रस यद्यपि शांत रस ही रहा। भाषा–रामकाव्य में मुख्यतः अवधी भाषा प्रयुक्त हुई है। किंतु ब्रजभाषा भी इस काव्य का शृंगार बनी है। इन दोनों भाषाओं के प्रवाह में अन्य भाषाओं के भी शब्द आ गए हैं। बुंदेली, भोजपुरी, फारसी तथा अरबी शब्दों के प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं। रामचरितमानस की अवधी प्रेमकाव्य की अवधी भाषा की अपेक्षा अधिक साहित्यिक है।

छंद–रामकाव्य की रचना अधिकतर दोहा-चौपाई में हुई है। दोहा चौपाई प्रबंधात्मक काव्यों के लिए उत्कृष्ट छंद हैं। इसके अतिरिक्त कुण्डलिया, छप्पय, कवित्त, सोरठा, तोमर,त्रिभंगी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है।

अलंकार–रामभक्त कवि विद्वान पंडित हैं। इन्होंने अलंकारों की उपेक्षा नहीं की। तुलसी के काव्य में अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग मिलता है। उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा का प्रयोग मानस में अधिक है।

ज्ञानाश्रयी मार्गी

इस शाखा के भक्त-कवि निर्गुणवादी थे और राम की उपासना करते थे। वे गुरु को बहुत सम्मान देते थे तथा जाति-पाँति के भेदों को अस्वीकार करते थे। वैयक्तिक साधना पर वे बल देते थे। मिथ्या आडंबरों और रूढियों का वे विरोध करते थे। लगभग सब संत अपढ़ थे परंतु अनुभव की दृष्टि से समृद्ध थे। प्राय: सब सत्संगी थे और उनकी भाषा में कई बोलियों का मिश्रण पाया जाता है इसलिए इस भाषा को 'सधुक्कड़ी' कहा गया है। साधारण जनता पर इन संतों की वाणी का जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। इन संतों में प्रमुख कबीरदास थे। अन्य मुख्य संत-कवियों के नाम हैं - नानक, रैदास, दादूदयाल, सुंदरदास तथा मलूकदास।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने निर्गुण भक्ति के स्वरूप के बारे में प्रश्न उठाए हैं तथा प्रतिपादित किया है कि संतों की निर्गुण भक्ति का अपना स्वरूप है जिसको वेदांत दर्शन के सन्दर्भ में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। उनके शब्द हैं–

"भक्ति या उपासना के लिए गुणों की सत्ता आवश्यक है। ब्रह्म के सगुण स्वरूप को आधार बनाकर तो भक्ति/उपासना की जा सकती है किन्तु जो निर्गुण एवं निराकार है उसकी भक्ति किस प्रकार सम्भव है ? निर्गुण के गुणों का आख्यान किस प्रकार किया जा सकता है ? गुणातीत में गुणों का प्रवाह किस प्रकार माना जा सकता है ? जो निरालम्ब है, उसको आलम्बन किस प्रकार बनाया जा सकता है। जो अरूप है, उसके रूप की कल्पना किस प्रकार सम्भव है। जो रागातीत है, उसके प्रति रागों का अर्पण किस प्रकार किया जा सकता है? रूपातीत से मिलने की उत्कंठा का क्या औचित्य हो सकता है। जो नाम से भी अतीत है, उसके नाम का जप किस प्रकार किया जा सकता है।

शास्त्रीय दृष्टि से उपर्युक्त सभी प्रश्न 'निर्गुण-भक्ति' के स्वरूप को ताल ठोंककर चुनौती देते हुए प्रतीत होते हैं। कबीर आदि संतों की दार्शनिक विवेचना करते समय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह मान्यता स्थापित की है कि उन्होंने निराकार ईश्वर के लिए भारतीय वेदांत का पल्ला पकड़ा है। इस सम्बन्ध में

जब हम शांकर अद्वैतवाद एवं संतों की निर्गुण भक्ति के तुलनात्मक पक्षों पर विचार करते हैं तो उपर्युक्त मान्यता की सीमायें स्पष्ट हो जाती हैं–

(क) शांकर अद्वैतवाद में भक्ति को साधन के रूप में स्वीकार किया गया है, किन्तु उसे साध्य नहीं माना गया है। संतों ने (सूफियों ने भी) भक्ति को साध्य माना है।

(ख) शांकर अद्वैतवाद में मुक्ति के प्रत्यक्ष साधन के रूप में 'ज्ञान' को ग्रहण किया गया है। वहाँ मुक्ति के लिए भक्ति का ग्रहण अपरिहार्य नहीं है। वहाँ भक्ति के महत्व की सीमा प्रतिपादित है। वहाँ भक्ति का महत्व केवल इस दृष्टि से है कि वह अन्तःकरण के मालिन्य का प्रक्षालन करने में समर्थ सिद्ध होती है। भक्ति आत्म–साक्षात्कार नहीं करा सकती, वह केवल आत्म साक्षात्कार के लिए उचित भूमिका का निर्माण कर सकती है। संतों ने अपना चरम लक्ष्य आत्म साक्षात्कार या भगवद्–दर्शन माना है तथा भक्ति के ग्रहण को अपरिहार्य रूप में स्वीकार किया है क्योंकि संतों की दृष्टि में भक्ति ही आत्म–साक्षात्कार या भगवद्दर्शन कराती है।

प्रेमाश्रयी शाखा

मुसलमान सूफी कवियों की इस समय की काव्य–धारा को प्रेममार्गी माना गया है क्योंकि प्रेम से ईश्वर प्राप्त होते हैं ऐसी उनकी मान्यता थी। ईश्वर की तरह प्रेम भी सर्वव्यापी तत्त्व है और ईश्वर का जीव के साथ प्रेम का ही संबंध हो सकता है, यह उनकी रचनाओं का मूल तत्त्व है। उन्होंने प्रेमगाथाएं लिखी हैं। ये प्रेमगाथाएं फारसी की मसनवियों की शैली पर रची गई हैं। इन गाथाओं की भाषा अवधी है और इनमें दोहा–चौपाई छंदों का प्रयोग हुआ है। मुसलमान होते हुए भी उन्होंने हिंदू–जीवन से संबंधित कथाएं लिखी हैं। खंडन–मंडन में न पड़कर इन फकीर कवियों ने भौतिक प्रेम के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम का वर्णन किया है। ईश्वर को माशूक माना गया है और प्रायः प्रत्येक गाथा में कोई राजकुमार किसी राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए नानाविध कष्टों का सामना करता है, विविध कसौटियों से पार होता है और तब जाकर माशूक को प्राप्त कर सकता है। इन कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी प्रमुख हैं। आपका 'पद्मावत' महाकाव्य इस शैली की सर्वश्रेष्ठ रचना है। अन्य कवियों में प्रमुख हैं – मंझन, कुतुबन और उस्मान।